महावीर के उपासक

सुभद्र मुनि

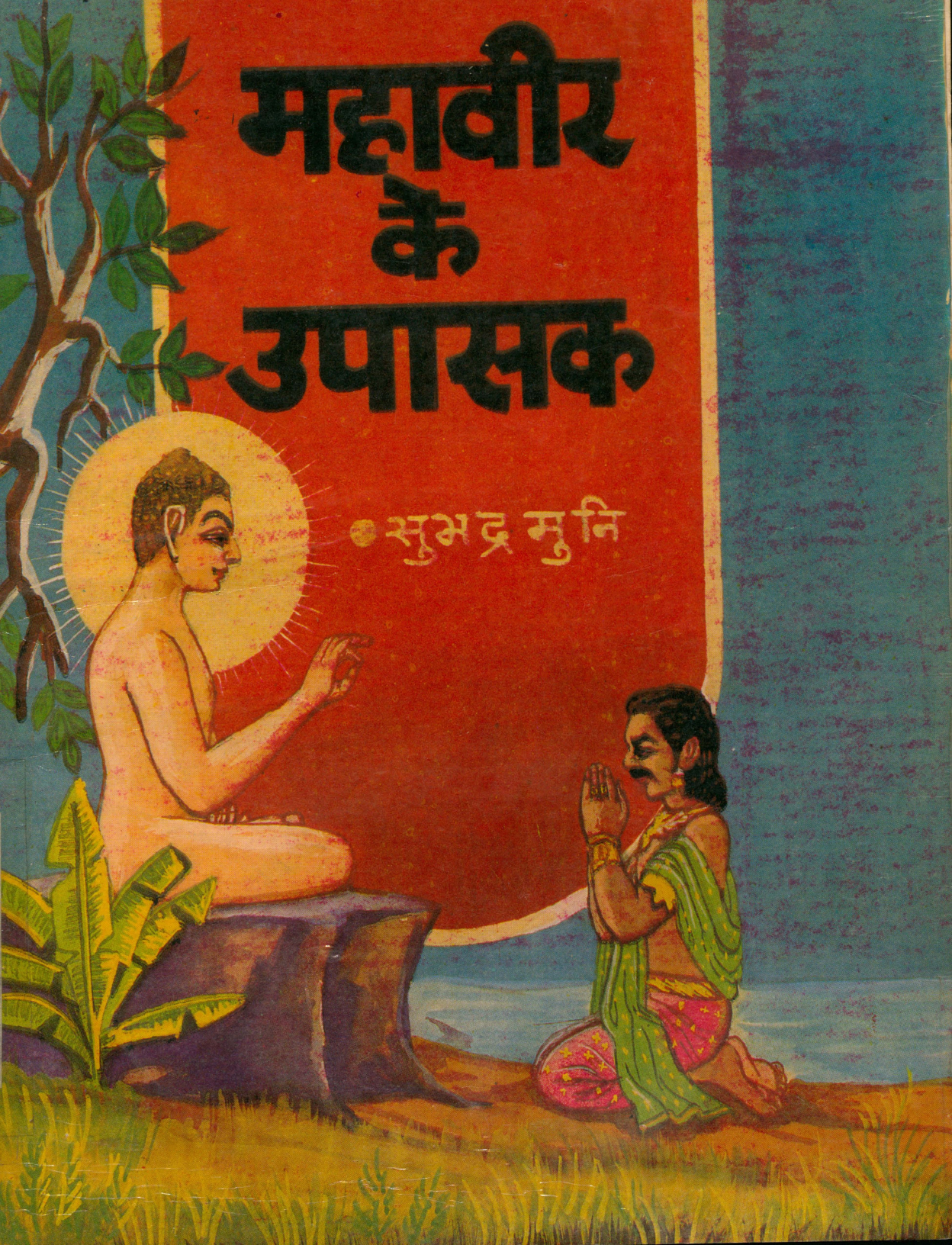

महावीर के उपासक

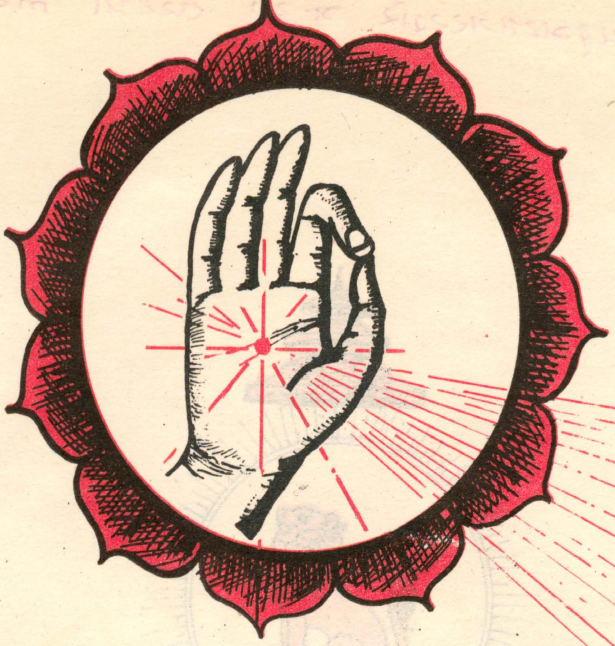

सुभद्र मुनि

महावीर के उपासक

अर्थ-सहयोग

प्रीतमचन्द विनय सागर जैन (रिंढाणा वाले)

4119/4 पहली मंजिल,
नया बाजार, दिल्ली,
दूरभाष : 2923152, 235934

ओंप्रकाश, सुरेन्द्र कुमार जैन

नया बाजार, दिल्ली
दूरभाष : 2914743

पुस्तक	:	महावीर के उपासक
लेखक	:	धर्मप्रभावक श्री सुभद्रमुनि जी महाराज
अवतरण	:	21 अगस्त 1993 (सांवत्सर महापर्व)
लागत		10/- ~~बारह~~ रुपये
चित्रांकन	:	अनुज के. भटनागर
प्रकाशक	:	मुनि मायाराम सम्बोधि प्रकाशन, के.डी. ब्लाक, पीतमपुरा: दिल्ली- 110034
वितरण प्रबन्ध	:	श्रीपाल जैन न्यू इण्डिया बुक एण्ड पिरिओडिकल्स 2731, त्रिनगर, दिल्ली-110035
मुद्रक	:	जय भारत प्रिन्टिंग प्रेस, दिल्ली-110032 फोन : 2295013

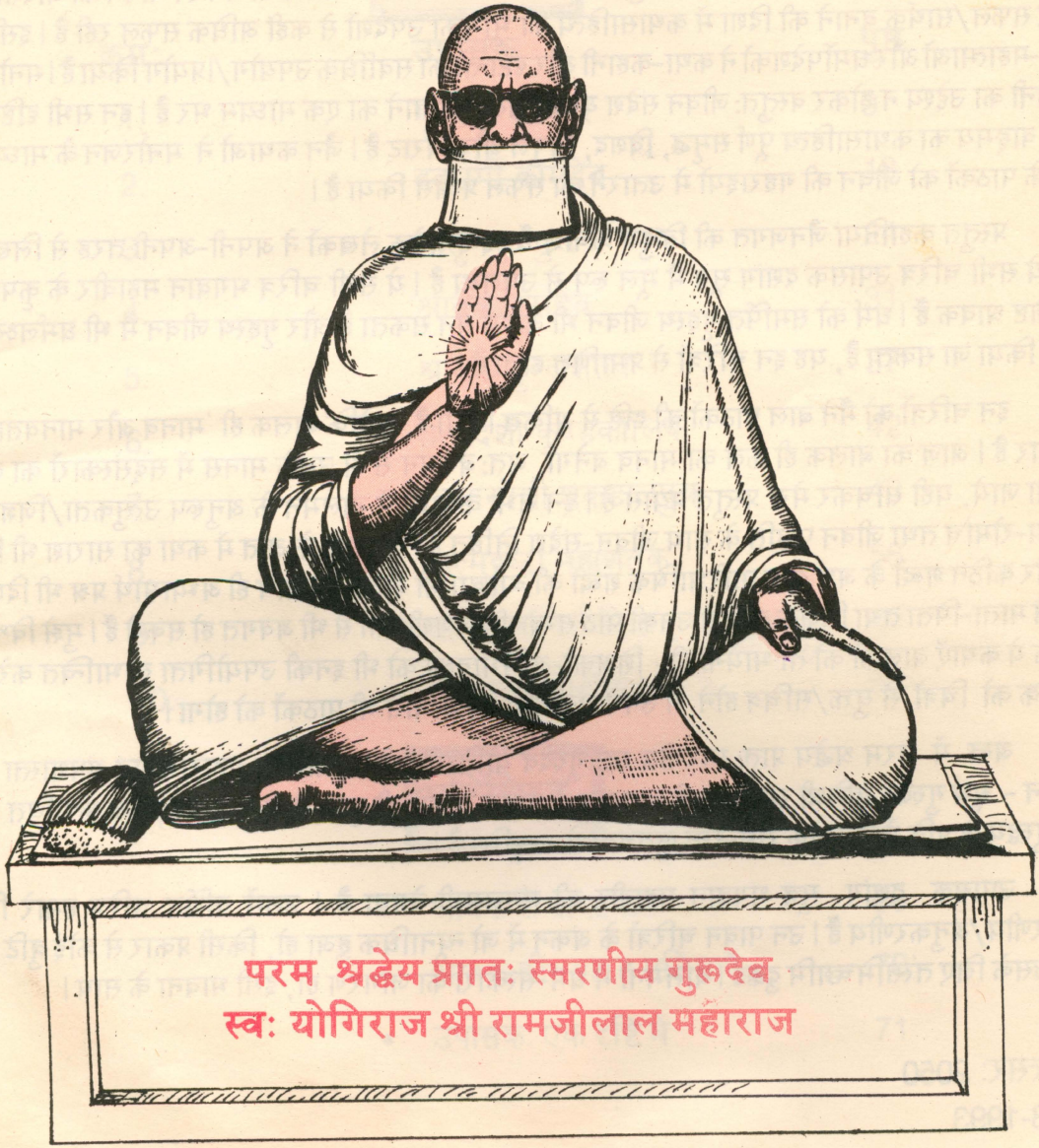

परम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय गुरूदेव
स्वः योगिराज श्री रामजीलाल महाराज

लेखकीय

कहानी, उपन्यास, आख्यायिका, लघुकथा, दृष्टान्त आदि कथासाहित्य के ही अंग हैं। जीवन को आदर्शोन्मुख और सफल/सार्थक बनाने की दिशा में कथासाहित्य की भूमिका उपदेशों से कहीं अधिक सफल रही है। इसीलिए संत-महात्माओं और धर्मोपदेशकों ने कथा-कहानी और दृष्टान्तों का सर्वाधिक उपयोग/प्रयोग किया है। मनोरंजन कहानी का उद्देश्य न होकर वस्तुत: जीवन संदेश या धर्मतत्व समझाने का एक माध्यम भर है। इन सभी दृष्टियों से जैन वाङ्मय का कथासाहित्य पूर्ण समृद्ध, विशद, विपुल और विराट् है। जैन कथाओं ने मनोरंजन के माध्यम से उसके पाठकों को जीवन की गहराइयों में उतारने का सफल प्रयास किया है।

प्रस्तुत कहानियां जैनजगत की विश्रुत कथाएं हैं। इन्हें अनेक लेखकों ने अपनी-अपनी तरह से लिखा भी है। ये सभी चरित्र उपासक दशांग सूत्र में मूल रूप से उपलब्ध है। ये सभी चरित्र भगवान महावीर के कृपापात्र विशिष्ट श्रावक हैं। धर्म को समर्पित गृहस्थ जीवन भी आदर्श बन सकता है और गृहस्थ जीवन में भी धर्मलक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, यह इन चरित्रों से प्रमाणित होता है।

इन चरित्रों को मैंने बाल पाठकों की दृष्टि से अंकित किया है, क्योंकि बालक ही 'मानव और मानवता' का आधार है। आज का बालक ही कल का मानव बनेगा, अत: बचपन से ही उसके मानस में सद्संस्कारों का वपन किया जाये, यही सोचकर मेरा प्रस्तुत प्रयास है। इन सभी कथाओं में बालमन के अनुरूप उत्सुकता/जिज्ञासा, रहस्य-रोमांच तथा जीवन पद्धति के साथ जीवन-संदेश निहित है। कथाओं के अन्त में कथा का सारांश भी दिया है और कठिन शब्दों के अर्थ तथा पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या भी दी गई है। साथ ही अभ्यासार्थ प्रश्न भी दिए हैं। इससे माता-पिता तथा शिक्षक बच्चों से उनकी पाठ सम्बन्धी ग्रहणशीलता से भी अवगत हो सकते हैं। मुझे विश्वास है कि ये कथाएँ बालकों को तो भायेंगी ही ; शिक्षकों-अभिभावकों को भी इनकी उपयोगिता लाभान्वित करेगी। पुस्तक को चित्रों से युक्त/सचित्र होने से उनमें सजीवता का आभास भी पाठकों को होगा।

अन्त में परम श्रद्धेय प्रात: स्मरणीय स्व. गुरुदेव योगिराज श्रीरामजीलाल महाराज एवं संघशास्ता जैन शासन - सूर्य गुरुदेव मुनिश्री रामकृष्णजी महाराज के पावन चरणों की कृपा से ही मेरा यह प्रयत्न रूपायित हुआ है। गुरुद्वय के प्रति मेरा प्रत्येक रोम-रन्ध्र कृतज्ञता से आपूरित है।

उपासक दशांग सूत्र भगवान महावीर की मंगलमयी देशना है। उसमें वर्णित चरित्र हमारे लिये आदरणीय/अनुकरणीय हैं। उन पावन चरित्रों के अंकन में जो न्यूनाधिक हुआ हो, किसी प्रकार से कोई त्रुटि रही हो, उसके लिए तस्समिच्छामि दुक्कडं। बालमनों में धर्म-संस्कारों का जागरण हो, इसी भावना के साथ।

सांवत्सर: 2050
21-8-1993

अनुक्रम

क्रम:	उपासक	पृष्ठ
1.	गृहपति आनन्द	9
2.	दृढ़धर्मी कामदेव	18
3.	मातृभक्त चुलनीपिता	24
4.	श्रावक सुरादेव	31
5.	श्रावक चुल्लशतक	37
6.	तत्वदर्शी कुण्डकौलिक	42
7.	सत्यान्वेशी शकडालपुत्र	48
8.	आत्मदृष्टा महाशतक	56
9.	श्रावक नन्दिनीपिता	62
10.	श्रावक सालिहीपिता	66
11.	परिशिष्ट	

- श्रावक के बारह व्रत 69
- श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ 70
- उपासक: एक दृष्टि में 71

1

गृहपति आनन्द

वैशाली नगर के निकट वाणिज्य ग्राम नाम का गाँव था। इस वाणिज्य ग्राम में आनन्द नाम का एक गाथापति या गृहपति रहता था। वह व्यापार और कृषि दोनों काम करता था। इससे उसे बहुत अधिक आय (लाभ) होती थी। उसके संचित कोष में करोड़ों स्वर्णमुद्राएं थीं। हजारों गायों के गोकुल थे। 500 हलों द्वारा खेती होती थी।

यह उसका बाहरी वैभव था। इन सब विशेषताओं के साथ-साथ उसमें अनेक ऐसे मानवीय गुण थे, जिनके कारण पूरा वाणिज्य ग्राम और वैशाली में रहने वाले हजारों लोगों में वह सम्माननीय था। सब आनन्द को अपना मार्ग-दर्शक, प्रेरक और आदर्श पुरुष मानते थे। वह बिना किसी सम्माननीय पद दिये / लिये ही जनप्रिय नायक और नेता था।

वह गरीबों की सच्चे मन से सहायता करता था। व्यापारियों और किसानों को अच्छी सलाह देता। इतना ही नहीं, वैशाली व वाणिज्य ग्राम के लोग आनन्द को बुद्धिमान, ईमानदार और नेक सलाहकार मानते थे। वे अपने परिवार की समस्या लेकर भी आनन्द के पास निस्संकोच पहुंच जाते थे।

आनन्द द्वार आये किसी भी व्यक्ति का अनादर नहीं करता। जिसे धन की आवश्यकता होती, उसे धन देता, जिसे स्वच्छ व सुलझे विचारों की जरूरत होती, उसको वे मिलते।

व्यापारी अपना व्यापार बढ़ाने के लिये महामना आनन्द के पास निस्स्वार्थ हितैषी मित्र मान कर, पहुंच जाया करते। आनन्द किसी को गलत सलाह नहीं देता।

आनन्द केवल लोकाचार निभाने वाला गाथापति नहीं था। वह मन और विचारों से साफ-सुथरा, धार्मिक, आचार-विचार-सम्पन्न सदाचारी व्यक्ति था।

आनन्द का परिवार

आनन्द मन से उजला था। उसके परिवार के सभी लोग आनन्द के विचारों, व्यवहार और परोपकार-भाव को पूरी तरह मानते एवं आचरण करते थे। उसकी धर्म-शीला पत्नी का नाम शिवानन्दा था। वह पति में श्रद्धा रखती थी। उसके खाने, पहनने, सोने, प्रभुभक्ति इत्यादि कार्यों में पूरी तरह सहयोग करती थी। ऐसे माता-पिता के बच्चे भी आनन्द के आचार-विचार के अनुरूप संस्कारी थे।

परिवार के सभी लोग आनन्द को आदर देते थे। आनन्द भी सब को यथायोग्य स्नेह,सम्मान और वात्सल्य लुटाता था।

आनन्द गाथापति बहुत बड़ा धनी था। साथ ही वह बहुत बड़ा दानी भी था। गोशाला, धर्मशाला, भोजनशाला, चिकित्सा केन्द्र, बावड़ी, उद्यान, अतिथि सम्मान शाला इत्यादि उस समय के प्रचलित जनोपकार के कार्य आनन्द ने किये थे।यही कारण था,आनन्द अपार सम्पत्ति का स्वामी होते हुए भी चिंता रहित था। उसके मन में पक्का विश्वास था कि धन का उपयोग केवल अपने लिये करते रहने से बड़ा दुरुपयोग कुछ नहीं है। धन, धरती से लिया है उसका अधिक से अधिक भाग धरती पर रहने वालों के लिये व्यय करना ही धन का सदुपयोग है।

भगवान् महावीर का वाणिज्य ग्राम में पधारना हुआ। उनके साथ प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह गणधर और हजारों श्रमण द्युतिपलाश नामक उद्यान में ठहरे। इस उद्यान में द्युति पलाश यक्ष का आवास था, इसलिए उद्यान का नाम भी उसी के नाम पर पड़ गया था। वाणिज्य ग्राम और आस-पास के लोगों को जब महाश्रमण महावीर के आगमन का पता चला तो हजारों की संख्या में नर-नारी भगवान की धर्म-देशना सुनने पहुंचे।

आनन्द ने भी सुना। वह भी उमंगित मन से अपने सेवकों, परिवार-जनों और इष्ट -मित्रों के साथ भगवान् की वाणी सुनने के लिए पहुंचा। महावीर में अत्यधिक श्रद्धा-भक्ति होने के कारण वह

भगवान् महावीर से व्रत ग्रहण करते हुए आनन्द-स्वामी।

पैदल-पैदल चलता हुआ समवसरण में पहुंचा।

आराध्य भगवान् महावीर को विधिपूर्वक वंदना की। उनकी पवित्र सन्निधि में बैठ गया। मन लगाकर प्रभु की देशना सुनी। मन में श्रद्धा जागी। देशना सुनने के बाद आनन्द ने भगवान से निवेदन किया –

"प्रभो, आपके वचनों में मेरी अटूट श्रद्धा हो गई है। इस संसार सागर को पार करने के लिये आपने जो चार तीर्थ हम संसारियों को बताये हैं, वे सर्वोत्तम हैं, पर प्रभु चाहते हुए भी श्रमण जीवन के महाव्रतों का पालन करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। अतः भगवन् मुझे अणुव्रत पालन करने की अनुमति प्रदान करें।" प्रभु ने कहा – "आनंद! जैसा तुम्हें सुखकर लगे तुम वैसा ही करो। लेकिन धर्माचरण में विलम्ब हितकर नहीं होता।"

भगवान की अनुमति प्राप्त कर गृहपति आनन्द ने पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत- इस प्रकार श्रावक के बारह व्रत विनय-नत होकर सहर्ष स्वीकार किये।

गृहपति आनन्द ने जो गृहस्थ धर्म के नियम स्वीकृत किये वे इस प्रकार थे ः स्थूल प्राणातिपात (बड़ी जीव हिंसा का त्याग), स्थूलमृषा-वाद (मोटे झूठ का त्याग), स्थूल अदत्तादान (मोटी चोरी) का त्याग किया। चतुर्थ अणुव्रत में आनन्द ने अपनी पत्नी शिवानन्दा के अतिरिक्त अन्य समस्त स्त्रियों के लिए सम्मान व्रत ब्रह्मचर्य व्रत अर्थात् मातृभाव रखने का व्रत लिया। पंचम अणुव्रत में धन के परिग्रह की सीमा के अन्तर्गत आनन्द ने कृषि, वाणिज्य, गोकुल आदि के माध्यम से धन-उपार्जन की सीमा निश्चित की। इतने धन से अधिक धन का मैं संग्रह नहीं करूंगा और परिग्रह की सीमा से अधिक जो धन आयेगा, उसे दान कर दूंगा।

इन नियम-व्रतों को स्वीकृत कर आनन्द जिनधर्मी श्रमणोपासक बन गया। धर्म का लाभ स्वयं उठा कर दूसरों को प्रेरित करना भी श्रावक का परम कर्तव्य है। इस दृष्टि से आनन्द ने अपनी पत्नी शिवानन्दा को भी प्रेरित किया कि वह व्रत ग्रहण करके श्रमणोपासिका बन जाये। तब शिवानन्दा ने भी भगवान् के श्रीमुख से बारह व्रत ग्रहण किये।

आनन्द की धर्म श्रद्धा और धर्म भक्ति को देख कर, भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधर गौतम ने भगवान् से पूछा - "भन्ते, गाथापति आनन्द का धर्म प्रेम श्रावक व्रतों के अनुपालन तक ही सीमित रहेगा या कालान्तर में यह मुनि दीक्षा लेकर महाव्रतों को भी ग्रहण करेगा?"

भगवान् ने कहा - "गौतम! आनन्द श्रमण बनकर महाव्रतों का पालन नहीं करेगा। वह गृहस्थ

में रहते हुए लम्बे समय तक श्रावक व्रतों का पालन करेगा और अन्तिम समय में संथारा - संलेखना व्रत ग्रहण करके मृत्यु का वरण करेगा। अन्त में देह त्याग करके इसकी आत्मा सौधर्म कल्प के अरुणाभ विमान में चार पल्योपम की स्थिति वाला देव बनेगी।"

कुछ समय पश्चात् भगवान् महावीर अन्यत्र प्रस्थान कर गये। आनन्द घर में रहकर धर्म का पालन करने लगा। यूं उसे चौदह वर्ष बीत गए। पन्द्रहवें वर्ष में उसने पूरी तरह धर्म का पालन करने के लिए अपना स्वामित्वाधिकार अपने ज्येष्ठ पुत्र को दे दिया। अपने समस्त सम्बन्धियों, मित्रों और परिचितों को बुलाकर कहा – "आज से आप सब मेरे स्थान पर मेरे ज्येष्ठ पुत्र को मानें। यही इस घर का मुखिया है। आप को सलाह - सम्मति की जरूरत हो तो आप लोग इसी से अब सम्पर्क करना। आज से मैं एकान्त में सभी झंझटों से मुक्त होकर पौषधशाला में धर्म की विशिष्ट साधना/ उपासना करूंगा।"

सभी से अनुमति लेकर आनंद कोल्लाग-सन्निवेश में स्थित पौषधशाला में रहने लगा। वहां उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं धारण की। सूत्र, कल्प, मार्ग और तत्व के अनुसार प्रत्येक प्रतिमा की साधना करने लगा।

इस तरह प्रतिमाओं की साधना (विशिष्ट तप) करने से आनन्द की देह कृश हो गई थी। उसकी देह अस्थि मात्र रह गयी। अंत में उसने संथारा-संलेखना व्रत धारण कर लिया। अनशन के इन्हीं दिनों में आनन्द को अविधज्ञान उत्पन्न हुआ।

उन्हीं दिनों भगवान् महावीर पुनः वाणिज्य ग्राम में पधारे। महाश्रमण महावीर से अनुमति लेकर गणधर गौतम वाणिज्य ग्राम में भिक्षा के लिए गए। नगर में उन्होंने आनन्द के बारे में सुना तो वे आहार लेने से पहले आनन्द श्रावक के पास पौषधशाला में गये। कृशशरीरी आनन्द ने गौतम को देखा तो हर्षित भाव से उनकी वन्दना की और कृतज्ञ भाव से बोला – "भन्ते। मेरी एक जिज्ञासा है। उसका समाधान करने की कृपा करें।" अनुमति मिलने पर आनन्द ने कहा – "क्या श्रावक को अवधि ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है?"

"अवश्य हो सकती है।" गणधर गौतम बोले।

"भन्ते, मुझे भी अवधि ज्ञान की उपलब्धि हुई है। मैं अब उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम की दिशाओं में पांच सौ योजन तक तथा नीचे नरकवास तथा ऊपर सौधर्म देवलोक तक की स्थितियों को जान/ देख रहा हूं।"

गौतम स्वामी आनन्द श्रावक को दर्शन देते हुए।

गौतम को लगा कि आनन्द मिथ्या भाषण कर रहा है। श्रावक (गृहस्थ) को इतना उत्कृष्ट ज्ञान नहीं हो सकता। अतः उसे सावधान करते हुए गौतम बोले – "आनन्द तुम्हें अपनी आलोचना करनी चाहिए! श्रावक को इस सीमा तक अवधि ज्ञान हो ही नहीं सकता।"

"भंते! फिर तो आपको अपनी आलोचना करनी चाहिए!"आनन्द ने अहंकार मुक्त हो कर कहा –"क्योंकि मैंने तो सत्य भाषण ही किया है।"

आनन्द ने पुनः कहा – "भन्ते! कहां आप महाश्रमण और कहां मैं तुच्छ श्रावक! परन्तु यदि मेरा कथन असत्य है तो आप श्रमण भगवान महावीर से इसका निर्णय कर लें।" "ठीक है, आनन्द!" यह कह कर गौतम, आनन्द के पास से चले गए। वे सीधे भगवान् के पास पहुंचे। सर्वज्ञ महावीर तो जान ही रहे थे कि गौतम के मन में क्या चल रहा है। गौतम ने अपनी जिज्ञासा प्रभु के चरणों में व्यक्त की।

भगवान् ने समाधान देते हुए फरमाया – "गौतम! आनन्द ने जो कहा है, वह सत्य है।"गौतम ने पुनः पूछा – "भंते! क्या श्रावक को इतना ज्ञान हो सकता है?"भगवान् ने फरमाया - "हां, हो सकता है।" तब गौतम समझ गए कि असत्य दोष मुझसे ही हुआ है। वे दोबारा कोल्लाग सन्निवेश गए। वहां आनन्द से उन्होंने क्षमा याचना की।

विनयमूर्ति आनन्द ने कहा –" प्रभो! क्षमा कैसी, सत्य की जीत होना निश्चित ही है। बड़ा साधक तो वही है जो सत्य को स्वीकार करता है। आप मेरे लिये पहले भी वंदनीय थे, अब भी वन्दनीय हैं, क्योंकि आप सत्य के निष्कपट आराधक हैं।"

आनन्द की इस अहंकार शून्यता अथवा निरहंकारिता से गौतम गद्‌गद हो गए।

आनन्द की देह क्षीण हो चुकी थी। शुभ भावों में रमण करते हुए आनन्द ने देह त्याग किया। वह प्रथम देवलोक में महान् ऋद्धि वाला देव बना। कालान्तर में वह भव पूर्ण करके मनुष्य बनेगा। फिर आत्म-साधना करके मुक्ति को प्राप्त कर जन्म, जरा, मृत्यु से रहित हो जायेगा।

सारांश

भगवान् महावीर ने धर्म आराधना दो प्रकार की कही है –
साधु धर्म और गृहस्थ धर्म। आनन्द ने गृहस्थ धर्म पर चलने का व्रत लिया था।

- पत्नी पति की अनुगामिनी होती है। पति पत्नी को अपने प्रत्येक कार्य से परिचित करवाता है, फिर उन्हें क्रियान्वित करता है।
- रथ के दोनों पहियों की तरह, पति-पत्नी समान रूप से एक दिशा में गतिमान होते हैं। इस तरह जीवन का रथ उद्देश्य की ओर बढ़ता जाता है।
- आनन्द ने जो व्रत स्वयं स्वीकार किये थे,उनसे अपनी पत्नी को भी अवगत करवाया। तब आनन्द की धर्मपत्नी ने भी उन व्रतों को स्वीकार किया।
- सन्तोष सुखी जीवन की कुंजी है। किसी व्यक्ति के पास अरबों, खरबों की सम्पत्ति हो जाये, परन्तु उसके जीवन में यदि सन्तोष नहीं है तो वह कभी सुखी नहीं हो सकता। सन्तोषी स्वल्प साधनों में भी सुखी होता है।
  भगवान महावीर ने आनन्द को इसीलिये अपरिग्रह व्रत (सन्तोष व्रत) स्वीकृत करवाया था।
- जीवन का अन्तिम लक्ष्य त्याग है, भोग नहीं। त्यागी इस जन्म में भी और आगे के जन्मों में भी सुखी होता है। भोगी यहां भी दुःखी रहता है और जन्म-जन्म तक तृष्णा की ज्वाला में जलता रहता है।
- आनन्द ने अपना अन्तिम समय विशिष्ट त्यागमय बना लिया था। साधना में व्यक्ति को अनेक दिव्य उपलब्धियां प्राप्त हो जाती हैं। उन उपलब्धियों पर यदि साधक अहंकार करने लगे तो प्राप्त उपलब्धियां नष्ट हो जाती हैं। यदि विनम्र बना रहे तो वे स्थायी बन जाती हैं। आनन्द को अवधि ज्ञान की विशिष्ट उपलब्धि मिली थी। लेकिन वह अहंकारी नहीं बना। विचार भेद होने पर भी आनन्द के मन में गौतम स्वामी के प्रति पूरी-पूरी विनय भक्ति बनी रही। यह एक गृहस्थ का आदर्श है।
- गौतम स्वामी सत्य के परम अन्वेषी थे। तीर्थंकर के सामने तो उनकी झोली सत्य के लिये सदैव फैली ही रहती थी, यदि उन्हें लगता कि किसी छोटे-से-छोटे व्यक्ति के पास भी सत्य है तो वे उसके ग्रहण करने में कभी संकोच नहीं करते थे। आनन्द से जो उनकी वार्ता हुई, उसको उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा का विषय नहीं बनाया, अपितु सत्य की खोज की। भगवान ने जब उन्हें बतला दिया कि आनन्द की बात सत्य है तभी गौतम ने उसे स्वीकार कर लिया और वे आनन्द के पास गये , उसकी उपलब्धि के लिये उसे बधाई दी। कहा – आनन्द ! तुम ठीक हो।
  महावीर संघ के शीर्षस्थ पुरुष (गुण के स्वामी) गणपति गौतम सच में धन्य-धन्य थे।

शब्दार्थ

अवधि ज्ञान = इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा से रूपी द्रव्यों को जानना।

गणधर = लोकोत्तर ज्ञान, दर्शन आदि गुणों के समूह को धारण करने वाले तीर्थंकरों के प्रधान शिष्य, जो उनकी वाणी का सूत्र रूप में संकलन करते हैं। श्रमण भगवान महावीर के ग्यारह गणधरों में इन्द्रभूति गौतम प्रथम गणधर थे। **अतिचार** = व्रत भंग के लिए सामग्री एकत्र करना या एक देश से व्रत का खण्डन करना। **आलोचना** = प्रायश्चित्त स्वरूप अपने दोषों, भूलों वस्तुतः चूक को गुरु के सम्मुख प्रकट करना। **अणुव्रत** = हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का यथा शक्ति एक देशीय त्याग। ये व्रत गृहस्थों के हैं और इनका पालन करने वाला गृहस्थ श्रावक तथा गृहिणी श्राविका कहलाती हैं। **गुणव्रत** = श्रावक के बारहवें व्रतों में छठा, सातवां और आठवां गुणव्रत कहलाते हैं। **शिक्षाव्रत** = बार-बार सेवन करने योग्य अभ्यास-प्रधान व्रतों को शिक्षा-व्रत कहते हैं। **समवसरण** = तीर्थंकर परिषद्। जहाँ पर तीर्थंकर देशना या उपदेश देते हैं, वह स्थान समवसरण कहलाता है। **देशना** = तीर्थंकर का धर्म उपदेश। श्रमण-मुनियों की प्रवचन-सभा को भी समवसरण ही कहते हैं। **श्रावक की प्रतिमा** = विशेष प्रकार की प्रतिज्ञा, कायोत्सर्ग। **प्रत्याख्यान** = त्याग करना। **महाव्रत** = अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन नियमों का पूर्ण रूप से पालन करना। **संलेखना** = शारीरिक तथा मानसिक एकाग्रता से कषायादि का शमन करते हुए तपस्या करना। संथारा = अन्तिम समय में आहार आदि का परिहार/परित्याग करना। **महाश्रमण** = साधना के सर्वोच्च शिखर पर स्थित मुनि।

अभ्यास

1. आनंद के जीवन की प्रमुख विशेषता बताएं।
2. आनंद के पास वाणिज्य ग्राम और वैशाली के लोग निर्भय होकर क्यों पहुंच जाते थे ?
3. भगवान महावीर से आनन्द ने कौन सी प्रतिज्ञायें लीं ?
4. गणधर गौतम ने भगवान से क्या प्रश्न किया ?
5. आनंद ने शिवानंदा से क्या कहा था ?
6. आनंद ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का प्रमुख क्यों बनाया था ?
7. आनन्द वाणिज्य ग्राम को छोड़कर कोल्लाग सन्निवेश की पौषधशाला में क्यों गये थे ?
8. प्रतिमायें क्या होती हैं ?
9. आनन्द श्रावक और गणधर गौतम के कथन में किसका कथन सत्य था ?
10. क्या आनन्द ने उसी जन्म में मोक्ष प्राप्त किया ?

2

दृढ़धर्मी कामदेव

चम्पा नगरी एक समृद्ध और बहुत सुन्दर नगरी थी। उन दिनों वहां जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगरी में कामदेव नामक गृहपति श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। पति-पत्नी दोनों सदाचारी और धार्मिक थे। कामदेव के पास अपार सम्पत्ति थी। छह-छह करोड़ मुद्राएं उसने साहूकारी व्यापार में लगा रखी थी और इतनी ही उसके कोष में जमा थी। उसके पास हजारों गायों का गोधन भी था।

चम्पापुरी के बाहर पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। एक बार वहां तीर्थंकर भगवान महावीर पधारे। हजारों नर-नारी उनकी देशना सुनने पहुँचे। गृहपति कामदेव और उसकी पत्नी भद्रा दोनों भगवान के दर्शनों के लिए गये। उन्होंने भगवान की मंगल देशना सुनी तो उनका मन धर्म-आराधना के लिए उमंगित हो उठा। उन दोनों ने प्रभु से श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। व्रत लेने के बाद कामदेव दृढ़तापूर्वक धर्म की आराधना करने लगा।

एक दिन श्रावक कामदेव ने विचार किया —घर गृहस्थी के अनेकों काम, व्यापार की भाग-दौड़ और मित्रों-सम्बन्धियों से मिलने-जुलने की व्यस्तता में धर्म की उपासना पूर्ण निश्चिंतता से नहीं हो पाती। अतः सब झंझटों से मुक्त होकर पूरा समय मुझे धर्म साधना में लगाना चाहिए ; क्योंकि यही अंततः मेरे काम आएगा।

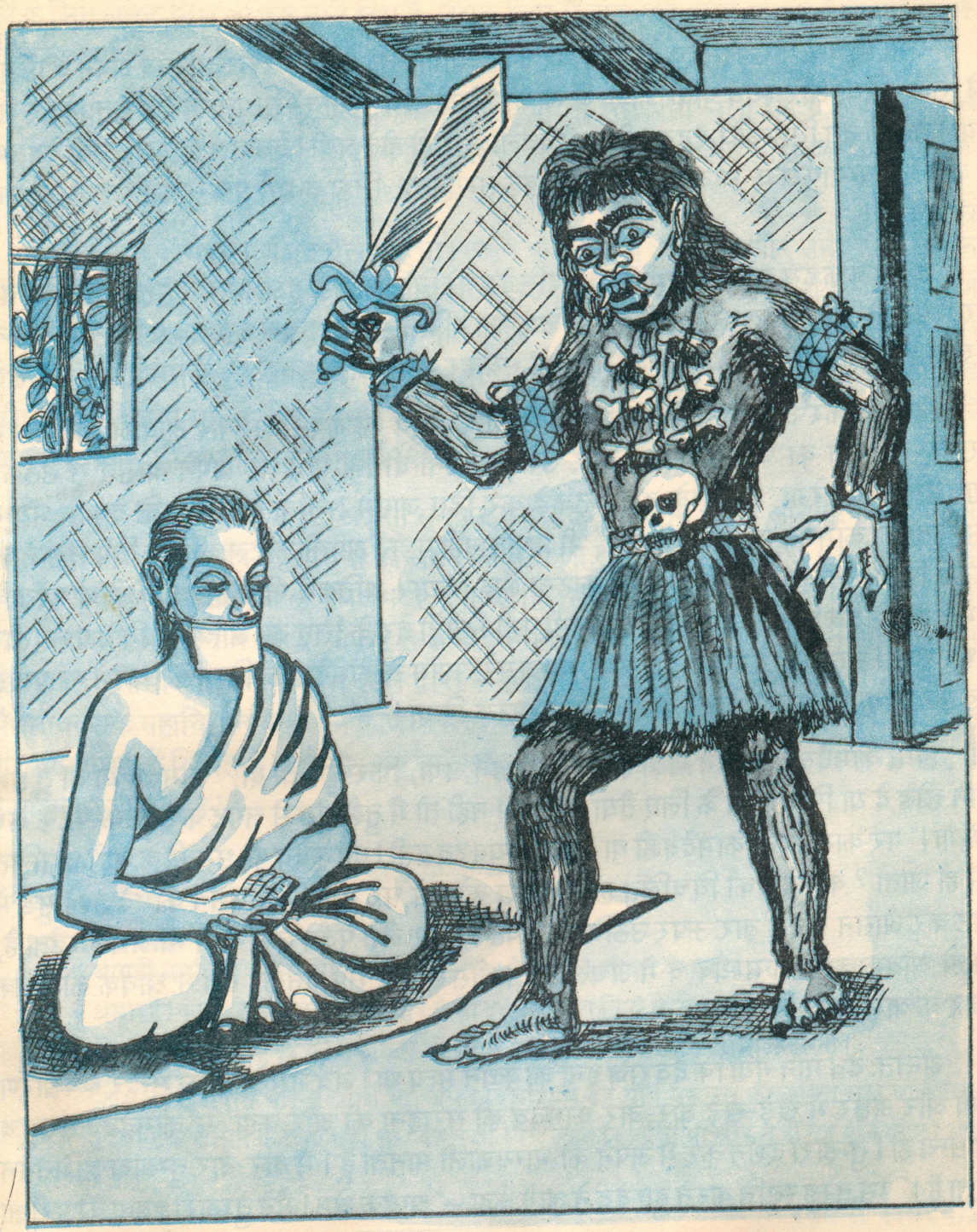

कामदेव श्रावक को मारने की धमकी!

ऐसा विचार कर कामदेव ने अपने घर और व्यापार का समस्त उत्तरदायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और स्वयं पौषधशाला में जाकर कायोत्सर्ग (ध्यान) साधना में निश्चिंत होकर लग गया। उसकी व्रत निष्ठा और दृढ़ता की चर्चा देवलोक में भी होने लगी। देवराज इन्द्र ने अपनी देवसभा में कहा कि चम्पापुरी के श्रावक कामदेव को दृढ़ सम्यक्त्व, निष्ठा व धर्म पथ से कोई विचलित नहीं कर सकता।

देवराज के इस कथन पर एक मिथ्यादृष्टि देव को विश्वास नहीं हुआ। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि मैं कामदेव को विचलित करके रहूंगा। जिस समय श्रावक कामदेव कायोत्सर्ग साधना में लगा हुआ था, तभी वह देव एक पिशाच का भयंकर रूप बना कर वहां पहुंच गया।

उस भयंकर आकृति के पिशाच ने पहले तो कामदेव को अपनी भयंकर आवाज और रूप से डरा कर डिगाने का प्रयास किया। फिर उसे चेतावनी दी कि यदि वह अपने आसन से उठकर ध्यानभंग नहीं करेगा तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएंगे। लेकिन मिथ्यादृष्टि देव के भय व धमकियों का कामदेव पर कुछ भी, कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी कुटिल चाल में विफल होने का कारण पिशाच ने कामदेव के अंगों को काटना शुरू किया। अतिशय पीड़ा होने पर भी कामदेव के सामने कुदृष्टि देव को पराजित हो हार माननी पड़ी। थोड़ी देर के लिए वह आत्मग्लानि व पश्चात्ताप से भर उठा। पर थोड़ी देर बाद ही उसने पुनः दूसरे उपाय से कामदेव को विचलित करने का प्रयास शुरू कर दिया। इस बार देव ने हाथी का रूप धारण किया।

हाथी कामदेव के सामने खड़ा होकर चिंघाड़ने लगा, फिर चुनौती दी, "कामदेव या तो तू धर्म ध्यान छोड़ दे या फिर मरने के लिए तैयार हो जा। नहीं तो मैं तुझे सूंड में लपेट कर पटक-पटक कर मारूँगा।" पर कामदेव तो कामदेव ही था –दृढ़ सम्यक्त्व व्रती। वह कुदेव की धमकी के आगे पराजित कैसे हो जाता ? कामदेव को विचलित होता न देख क्रोध में भर गया। तब उसने कामदेव को सूंड में लपेट कर आसन से कई बार ऊपर उठाया और पटका, पर जैसे पर्वत तूफानों में भी अचल रहता है, वैसे ही श्रावक कामदेव सम्यक्त्व में अचल रहा। तीसरी बार सर्प बनकर देव ने श्रावक को अनेक प्रकार के त्रास दिए।

अन्ततः देव मान गया कि देवराज इन्द्र का कथन सत्य था। अब उसने देव का सुन्दर रूप धारण किया और अधर में खड़े-खड़े बार-बार कामदेव की सराहना की और कहा –"कामदेव! सचमुच तुम धन्य हो। तुम्हारा दर्शन कर मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। मैं बार-बार तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ।" इस तरह स्तुति करते हुए देव ने आगे कहा –"श्रावक श्रेष्ठ! मैंने तुम्हारी दृढ़ता की परीक्षा

लेने के लिए अनेक विध जो कष्ट तुम्हें दिए हैं, उसके लिए मैं बार-बार क्षमा मांगता हूँ।" यह कह कर देव चला गया।

इसके अनन्तर जब कामदेव का ध्यान पूर्ण हुआ तो उसे पता चला कि प्रभु महावीर पुनः चम्पापुरी में पधारे हैं। वे पूर्णभद्र चैत्य में विराजमान हैं। तब उसने अभिग्रह (संकल्प) किया कि मैं भगवान के दर्शन और वंदन करने के पश्चात ही आहार ग्रहण करूंगा, पहले नहीं।

दूसरे दिन कामदेव पूर्णभद्र चैत्य पहुंचा। उसने भगवान की वंदना की और उनकी देशना सुनने बैठ गया। अन्तर्यामी भगवान् महावीर ने कामदेव की विगत रात्रि में घटित उपसर्गों (कष्टों) का वर्णन करते हुए उपस्थित जनों से कहा –"कामदेव ने रात्रि में जो उपसर्ग सहन किये हैं वैसे उपसर्ग सभी साधकों को भी सहन करने चाहिए। परीषह आने पर साधकों को विचलित नहीं होना चाहिए। इन परीषहों का विजेता साधक अपने कर्मों की महान् निर्जरा करता है।" उपस्थित श्रमणों ने 'तहत्ति' कहकर भगवान की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

भगवान के श्रीमुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कामदेव तनिक भी हर्षित और गर्वित नहीं हुआ। उसने यही सोचा गत रात्रि में उपसर्गों को सहने की मेरी जो सामर्थ्य थी, वह मेरी स्वयं की नहीं थी। अपितु भगवान और धर्म की ही मंगलमयी कृपा थी। कामदेव भगवान की देशना सुनकर घर लौट गया। महावीर भगवान ने भी चम्पापुरी से अन्यत्र विहार किया। कामदेव ने अंत में क्रमशः श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं धारण कीं। अनशन द्वारा समाधिमरण प्राप्त किया। कामदेव सौधर्म कल्प के सौधर्मावंतसक महाविमान के ईशान कोण के अरुणाभ विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ। वहां उसकी चार पल्योपम की स्थिति है। वहां से आयु, को पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और वहां से मुक्ति को प्राप्त होगा।

सारांश

- आग्रही या जिद्दी होना, यह विचारों का विष है। अपने जीवन के लक्ष्य पर दृढ़ रहना यह जीवन का अमृत है। कामदेव ने भगवान महावीर से जो व्रत अंगीकृत किये थे उन पर कामदेव पूरी तरह आस्थावान हो गया था। वहां शंका को एक कण भी स्थान न था , इसलिए उसे दृढ़धर्मी कहते हैं।
- कामदेव शीलवान था, सन्तोषी था, अपने विचारों में दृढ़ था। यह उस का अपना सुख था किसी के दिखाने या बताने के लिए नहीं था। वह न तो स्वयं अहंकार जीता था और न ही वह प्रक्रिया को अपनी

विशिष्टता दिखाना चाहता था। यह उसके अजेय होने का रहस्य है।

- शरीर और आत्मा, ये दोनों भिन्न भिन्न तत्व हैं। शरीर जड़ है। स्वयं में अपनी अनुभूति की शक्ति नहीं है। कर्म सहित आत्मा ही सुख-दुख का कर्त्ता और भोक्ता है।
  शरीर नाशवान है, वह जन्मता है, वृद्ध होता है और मरता है तथा नष्ट होकर पृथ्वी में विलय हो जाता है। आत्मा अजर-अमर अविनाशी है। वह अजन्मा है। शाश्वत है। न वह नष्ट होता है, न उसे कोई नष्ट कर सकता है।
  ऐसी आस्था थी - कामदेव की।
- कामदेव के विचारों में दृढ़ता कितनी है, यह जानने/परखने को देव उपस्थित हुआ था। उसने अनेक कष्ट देकर यह देखना चाहा -कामदेव मात्र कहता है या जो कहता है वह जीवन में विद्यमान है। देव ने कामदेव को पूर्ण रूप से आस्थावान पाया।
- देव द्वारा दिये गये उपसर्गों से कामदेव के विचलित न होने का रहस्य उसकी आत्मा और शरीर की भिन्नता का दर्शन था।
- देव जब परास्त हो गया और उसने क्षमा मांग ली, तब भी कामदेव को स्वयं पर अहंकार नहीं जागा।

शब्दार्थ

सम्यक्त्व = यथार्थ तत्व श्रद्धा। **कायोत्सर्ग** = एकाग्र होकर शरीर की ममता का त्याग करना। **पल्योपम** = उपमा विशेष, काल परिमाण। **मिथ्या दृष्टि** = तत्व के प्रति विपरीत श्रद्धा। **निर्जरा** = तप के द्वारा कर्ममल के उच्छेद से होने वाली आत्मा की उज्ज्वलता। **उपसर्ग** = देव, मनुष्य या पशु- पक्षी द्वारा दिये जाने वाले कष्ट। **तहत्ति** = जैसा आप ने कहा, वह सत्य है।

अभ्यास

1. कामदेव की पारिवारिक व आर्थिक स्थिति का वर्णन अपने शब्दों में करो।
2. घर - गृहस्थी को जीते हुए कामदेव ने क्या अनुभव किया ?
3. परीक्षा लेने आया देव सम्यक् दृष्टि था या मिथ्या दृष्टि ?
4. देव ने कामदेव श्रावक को क्या-क्या कष्ट दिये थे ?

5. साधना के समय जो बाहरी कष्ट साधक को मिलते हैं, उनका उपयुक्त नाम क्या है ?
6. कामदेव श्रावक को ध्यान से देव क्यों नहीं डिगा सका ?
7. बताओ कामदेव के विचलित न होने पर देव ने उससे क्या कहा था।
8. भगवान महावीर ने कामदेव श्रावक की प्रशंसा क्यों की थी ?
9. भगवान महावीर द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर कामदेव श्रावक को कैसा लगा था ?

3

मातृभक्त चुलनीपिता

भगवान महावीर के समय की बात है। वाराणसी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। इसी नगर में चुलनीपिता नामक श्रेष्ठी रहता था। उसे गाथापति कहा जाता था ; क्योंकि वह अभाव-ग्रस्त लोगों की धन के द्वारा सहायता करता था। यह सब करते हुए भी उसमें अभिमान नहीं था। भलाई के दान - पुण्य के कार्य करके वह उन्हें भूल जाता था। उसने अपने मन में निश्चय कर रखा था कि जैसे स्नान करना, भोजन करना याद नहीं रखा जाता है, वैसे ही भलाई के हर काम को करके भूल जाना ही सुखद है।

सुबह को किया भोजन शाम को भूख लगा देता है। शाम का भोजन अगले दिन फिर भूख जगा देता है। ऐसे ही हर दिन ही पिछले अच्छे काम को भूल कर नया काम करना चाहिए। उसके इसी नेक गुण के कारण राजा, प्रजा, सम्बन्धी और पड़ोसी सब की आंखें चुलनी पिता को देख श्रद्धा से झुक जाती थीं। विनय और नम्रता का गुण उस के शरीर में दौड़ने वाले रक्त की तरह समाया हुआ था।

उसकी धर्मशीला पत्नी श्यामा भी वात्सल्य व विनम्रता की मूर्ति थी। हजारों गायों के गोकुल, कृषि व व्यापार ये उसकी आय के मुख्य स्रोत थे। कई हजार गायों के समूह को गोकुल कहा जाता था। अनेक गोकुलों की आय, व्यापार व कृषि की आयों का लेखा-जोखा करोड़ों स्वर्ण मुद्रा था। श्यामा तीन पुत्रों की मां थी। उसके तीनों पुत्र माता-पिता के आज्ञाकारी थे। पत्नी का स्नेह व पुत्रों का प्रभूत

आदर प्राप्त होने पर भी वह हर रोज अपनी वत्सला माता की चरण वंदना करना नहीं भूलता था। उसे जब भी भूख लगती वह अपनी माता के पास जाता। चरण वंदना करता और भोजन के लिए छोटे बच्चे की तरह नम्रतापूर्वक कहता : मां भूख लगी है, भोजन दे दे।

चुलनीपिता की माता का नाम था भद्रा सार्थवाही। चुलनीपिता जब अपनी मां से भोजन मांगता तो उसे बेहद खुशी होती थी। वह चाहता तो पत्नी श्यामा से या पुत्रों को आज्ञा देकर भोजन प्राप्त कर सकता था। पर उसका मानना था, भोजन तो मां के हाथ से ही लेकर खाने में आनन्द आता है। एक दिन मां भद्रा अपने बेटे चुलनी पिता से बोली – "बेटा, अब तू तीन पुत्रों का पिता हो गया है। अनेक दास-दासी तेरे सेवक हैं; फिर भी तू मेरे पास बैठ कर भोजन करता है। मुझ से ही भोजन मांगता है। अपनी पत्नी श्यामा से भोजन मांगा कर न ?"

"मां तुम ठीक कहती हो। अभी तो मैं युवा ही हूं। बूढ़ा हो जाऊंगा तब भी मैं तेरा बेटा ही रहूंगा। तेरे लिए तो छोटा का छोटा ही रहूंगा। मेरे जीवन में सुख और समृद्धि सब का आधार तेरा आशीर्वाद तथा प्यार ही है। मां ! बेटे जैसे प्यार की अमृत वर्षा करना श्यामा के बस की बात नहीं है कि वह तेरे जैसा प्यार दे सके।" चुलनी पिता ने मां भद्रा के सवाल का जवाब दिया। "चल श्यामा से न सही, दास दासी तो हैं।" भद्रा ने फिर से चुलनीपिता से अपनी बात कही।

इस पर चुलनीपिता ने उसी विनम्रता से उत्तर दिया –"मां ! बचपन में भी मुझे भूख लगती थी। आज भी लगती है। नौकर - सेवक तब भी थे। तब भी मैं तुझ से ही भोजन मांगता था। मैं कहता था – मां भूख लगी है। क्या करूं मां मेरा पेट ही तेरे हाथ का परोसा भोजन खा कर भरता है। मैं तेरे पास बैठकर धीरे-धीरे भोजन करता हूं। इस भोजन वेला में जो तू मुझे नेह से निहारती है, बस तृप्ति उसी से होती है। उसी तृप्ति को पाने के लिए मैं तेरे हाथ का परोसा भोजन खाना पसंद करता हूं।"

भद्रा सेठानी बोली– "अरे नादान इतना बड़ा होकर भी मां से मोह करता है ?"

"मां तो मां ही होती है। मां से बड़ा न कोई देव है, न गुरु। तू ही देवतुल्य है, गुरु है क्योंकि तू मां है। मां तीर्थ है। मां संसार में सब से बड़ी होती है। मां, मैं बड़ा भाग्यशाली हूं, वह भी तेरे कारण हूं। जिस पुत्र की मां संसार में है, वह सब से बड़ा होता है। वही सौभाग्य द्वार का स्वामी होता है। जिसके बेटा कह कर पुकारने वाली मां मौजूद हो, उससे सुखी बेटा और कौन हो सकता है इस संसार में ?"

परिवार का स्नेह और नागरिकों का सम्मान पा कर भी गाथापति चुलनीपिता के मन में एक

गहरी बेचैनी बार-बार उग आती थी। उसके जीवन में एक अज्ञात तड़प थी। वह शाश्वत शांति चाहता था। आखिर एक दिन ऐसा आया कि उसने वह सब कुछ पा लिया। जो कल तक उसके जीवन में नहीं था, वह उसे मिल गया। कैसे ?

वाराणसी नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य उद्यान में भगवान महावीर पधारे। उनके दर्शन करने भारी जन समूह वहां पहुंचा। चुलनी पिता भी अपनी पत्नी श्यामा के साथ दर्शन व उपदेश सुनने वहां पहुंचा। उसने विधिपूर्वक भगवान की वन्दना की और देशना सुनने लगा। देशना सुनकर उसने पाया कि मेरे जीवन में सब कुछ था, पर धर्म का अभाव था। आज मुझे सद्धर्म मिल गया। चुलनी पिता भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति का अनुयायी बन गया। उसने भगवान से श्रावक के बारह व्रत ग्रहण कर लिये। उसकी पत्नी श्यामा ने भी श्रावक व्रत ग्रहण किए।

चुलनी पिता की प्रवृत्ति अब धर्ममय हो चुकी थी। संसार और संसार के व्यापार से उसे पूर्ण विरक्ति हो गई थी। कुछ समय पश्चात् चुलनी पिता ने एक प्रीतिभोज का आयोजन किया। भोज में हजारों परिचित, मित्र, सम्बन्धी आदि आये, उन सब के सामने चुलनी पिता ने घोषित किया – "आप सबकी जानकारी और उपस्थिति में मैं अपना समस्त दायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपता हूं। अब से संसार के सभी कार्य मेरे स्थान पर मेरा बड़ा पुत्र ही देखेगा। मैं अपने शेष जीवन को अब धर्म-साधना को समर्पित करता हूं।"

सभी प्रकार के दायित्वों से मुक्त होकर चुलनी पिता ने पौषधशाला में रहने का निश्चय किया। एक दिन वह पौषध व्रत का नियम लेकर धर्म-चिंतन करने लगा। आधी रात का समय हो आया, तब एक मिथ्यादृष्टि देव उसे उपसर्ग देने के विचार से वहां प्रकट हुआ। देव ने अपना भयंकर रूप बनाया और भयंकर आवाज से चुलनी पिता को डराने लगा। चेतावनी देते हुए वह बोला –"मूढ़ श्रावक, यदि तू शील व्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधव्रत से चलित नहीं होगा तो मैं तेरे तीनों पुत्रों को मार डालूंगा, और तुम पर भी खौलता तेल डाल कर तुझे तड़पाऊंगा।"

चुलनीपिता पर देव की इन धमकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपने आसन पर स्थिर होकर बैठा रहा, इतने में देव ने वैक्रिय शक्ति से माया रची।

उसने अपनी मायावी शक्ति से चुलनीपिता के बड़े पुत्र की आकृति बनाई। वह सचमुच में पुत्र ही लग रहा था। उसे लेकर, वह श्रावक के सम्मुख आया। बोला – मैं तेरे पुत्र को मार रहा हूं। यह कह उसने तलवार से उसके खण्ड-खण्ड कर दिये।

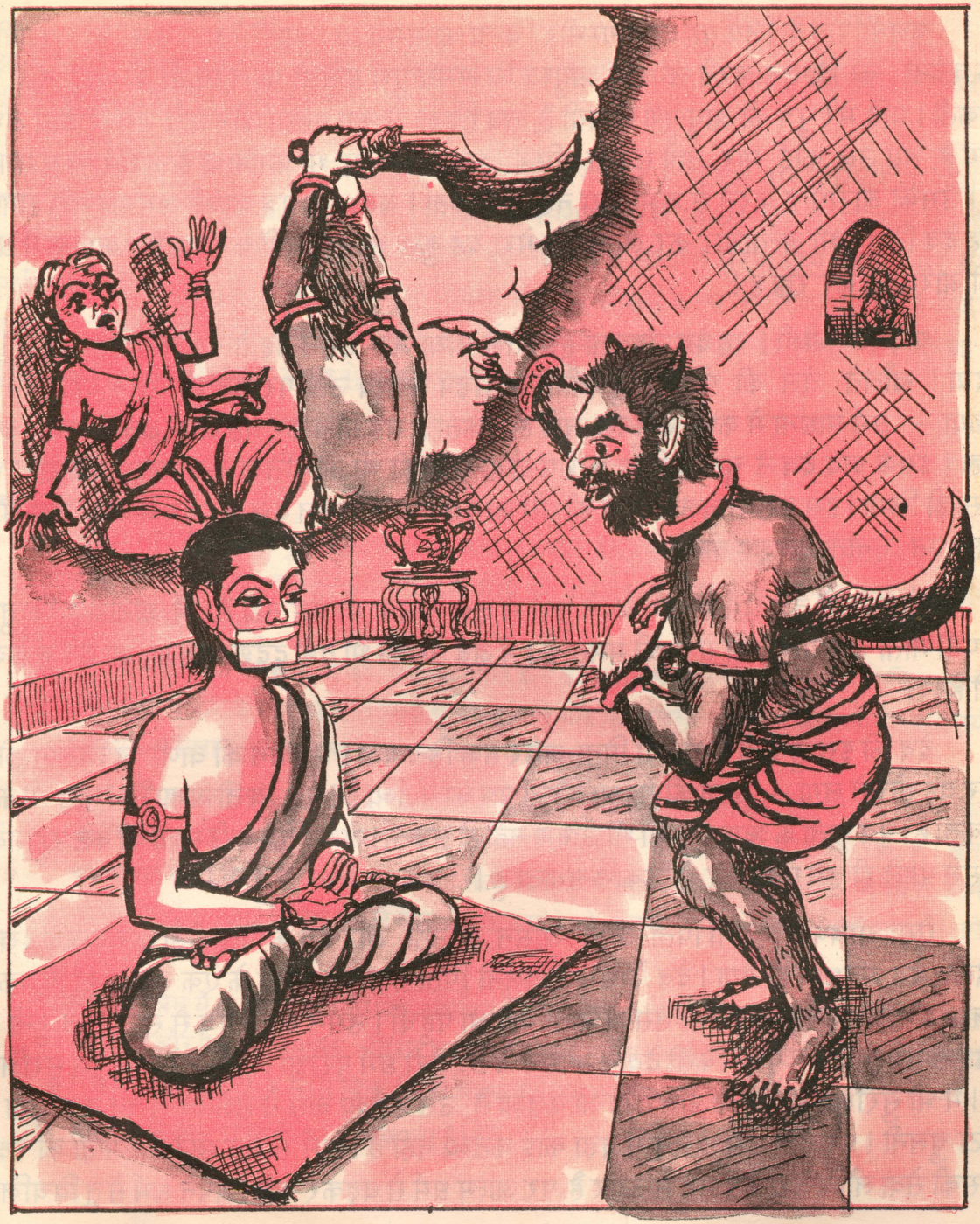

मातृवध का भय दिखाते हुए।

चुलनीपिता के लिये यह बहुत गम्भीर चिन्ता का समय था। वह चिन्ता में न पड़ कर महावीर के वचनों का चिन्तन करने लगा – 'आयुष्य का समय पूर्ण होने से पहले किसी की मृत्यु नहीं हो सकती। यदि मेरे पुत्र की आयु पूर्ण हो गयी है, तब चिन्ता से क्या बनेगा और यदि उसकी आयु अभी शेष है, तब उसे कोई मार नहीं सकता। फिर भगवान ने यह भी फरमाया है – धर्म परम मंगल है। उसकी आराधना करने से कभी बुरा नहीं हो सकता। अतः मेरे पुत्र का भी अमंगल नहीं होगा। यह देव कितने भी अत्याचार कर ले, परन्तु मेरा यह कुछ भी बुरा नहीं कर सकता, क्योंकि मैं धर्म की आराधना कर रहा हूं।'

थोड़ी देर बीती। वह देव उबलता हुआ तेल लाया और उसने वह तेल चुलनीपिता पर उँ ड़ेल दिया। खौलते तेल की पीड़ा से चुलनी पिता तड़प अवश्य उठा पर तब भी उसने यही चिन्तन किया – 'धर्म साधना में कभी अमंगल नहीं हो सकता।' यह सोच कर वह अपने व्रत में अचल बना रहा। इसके बाद देव ने चुलनी पिता के शेष दोनों पुत्रों की भी आकृतियां बनाकर, उनके साथ भी वैसा ही किया। इस पर भी चुलनीपिता को धर्म जागरणा में अविचल देख कर देव बौखला उठा और फिर पुनः चुनौती देते हुए बोला –

"धर्म से तो तुझे प्रेम है, पर अपने पुत्रों से तुझे तनिक भी प्रेम नहीं है। मैं जानता हूं कि तुझे अपनी माता भद्रा सार्थवाही से गहरी ममता है। मैं अब उसकी भी वही दुर्दशा करूंगा, जो तेरे पुत्रों की की है।"

देव की इस चुनौती से चुलनी पिता अंदर तक हिल गया। भगवान की वाणी का चिन्तन छोड़ कर वह सोचने लगा – 'माता की सुरक्षा करना पुत्र का कर्तव्य है। यह देव तो अनार्य है। कुछ भी कर सकता है। पुत्र माता के ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकता। अनार्य देव मेरी माता को कष्ट पहुंचाये, उससे पहले ही इसे पकड़कर मैं ठिकाने लगाता हूं।'

ऐसा सोचकर चुलनी पिता अपने आसन से उठा और देव के पीछे दौड़ा। पर उसके देखते-देखते देव अंतर्धान हो गया। देव के भ्रम में चुलनी पिता ने पौषध शाला के एक स्तम्भ को ही पकड़ लिया और चिल्लाने लगा। तभी उसकी माता वहां आ पहुंची। उसने अपने पुत्र से सारी बातें सुनी – तो उसे समझाया – "पुत्र! किसी देव ने उपसर्ग देकर तेरी धर्म परीक्षा ली है। तेरे तीन पुत्र सुरक्षित हैं। मैं भी सुरक्षित हूं। मां के प्रति तेरा जो कर्तव्य है, उस कर्तव्य बोध ने तुझे विचलित कर लिया है बेटा चुलनी। पर बेटा धर्म पालन से बड़ा कोई कर्तव्य नहीं है। धर्म से सब छोटे हैं। माता की रक्षा उसकी सेवा लौकिक धर्म में सब से ऊपर है पर आत्म धर्म से बढ़कर नहीं। अपने धर्म से तू विचलित

हुआ है , अतः तू इस दोष की आलोचना कर और फिर से पौषध व्रत में समता की उपासना कर। इसी में तेरा हित है।"

चुलनीपिता ने अपनी भूल का प्रायश्चित्त किया और फिर से पौषध व्रत में स्थिर हो गया। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं धारण की। इस विशिष्ट धर्म-उपासना से उसकी आत्मा उज्ज्वल हो गई, काया उज्ज्वल होती गई , अन्त में अनशन करके चुलनीपिता ने समाधि मरण प्राप्त किया। मर कर उसकी आत्मा ने देवभव को प्राप्त किया।चुलनीपिता मर कर सौधर्म कल्प के अरुणाभ विमान में देव बना था। देवभव पूर्ण करके वह महा विदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और संयम का पालन कर हमेशा - हमेशा के लिए जन्म-मरण के बंधन से छूट कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

सारांश

- संसार मोह के तारों में बुना हुआ जाल है। जाल में संसार की अनन्त-अनन्त आत्मायें फंसी हैं, बंधी हैं। जब मोह के तार टूट जाते हैं तब जीव मुक्त होता है। यदि एक भी तार बचा रह गया, तब तक जीव मुक्त नहीं हो सकता।
- चुलनीपिता ने पौषध साधना की। यह मोहातीत होने का उपाय है। उसने पुत्र, स्त्री, धन आदि पर होने वाले सभी प्रकार के मोह तो जीत लिये थे परन्तु मातृ मोह की श्रृंखला को वह न खोल पाया, इसलिये देव द्वारा परीक्षा लिये जाने पर उसका ध्यान भंग हो गया।
- पुत्रों की रक्षा के लिये तत्पर न होना, चुलनीपिता की हृदय हीनता न होकर, उसकी इस आस्था का द्योतक था – आत्मा अजर-अमर है। कोई देव-दानव चाह कर भी किसी को मार नहीं सकता। अतः वह अचल रहा। माता के सन्दर्भ में उसे यह सत्य विस्मृत हो गया। यह चुलनीपिता के पौषध से उठने का कारण बना। यहां विशेष रूप से स्मरणीय है – मोह को जीतने की प्रेरणा स्वयं उसकी माता ने उसे दुबारा से दी थी।
- मोह और प्रेम ये दो भिन्न तत्व हैं।मोह अन्धकार है प्रेम प्रकाश है। मोह आदमी के चिन्तन को संकुचित बनाता है और प्रेम उसे व्यापक विराट् बनाता है। प्रेम से परिपूर्ण व्यक्ति अपने तथा पराये की परिधि से ऊपर उठकर सभी के लिये बिना किसी भेदभाव के समान व्यवहार करता है।
- मोह का विजेता ही मुक्ति को प्राप्त करता है।

शब्दार्थ

वन्दना = मन-वचन-कर्म का वह प्रशस्त भाव, जिससे तीर्थंकरों - श्रमणों के प्रति बहुमान प्रकट करना। **पौषधव्रत** = इसके माध्यम से आत्म शोधन में निरत होकर संसार शोधन में लगने का एक प्रकार। आत्म-चिन्तन द्वारा साधक को विश्रान्ति लेने का एक साधन। आत्मधन प्राप्ति में संलग्नता। पौषधव्रत से आत्मबल में वृद्धि होती है और आध्यात्मिकता की उपलब्धि भी।**धर्म - प्रज्ञप्ति** = धर्म-उपदेश। **प्रवृत्ति** = आचरण।

निवृत्ति = त्याग।**धर्म-जागरण** = धर्म आचरण के लिये चिन्तन करना या विवेकवान रहना।**शील** = श्रेष्ठ नियम।**विरमण** = त्याग।**पौषधोपवास** = पौषध अर्थात् पर्व दिनों में गृहस्थ सम्बन्धी सभी कार्यों को छोड़कर उपाश्रय आदि किसी धर्मस्थान में जाकर व्रत-उपवास सामायिक, प्रतिक्रमण आदि करना। **अनार्य** = हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों में प्रवृत्त व्यक्ति।

अभ्यास

1. चुलनीपिता का अपनी माता के प्रति क्या भाव था ?
2. मां के पास बैठ कर भोजन करने में चुलनी पिता को क्या अनुभव होता था ?
3. प्रीति भोज का आयोजन चुलनी पिता ने क्यों किया था ?
4. चुलनी पिता को संसार से निवृत्ति और धर्म में प्रवृत्ति हुई, इसके लिए उसे क्या करना पड़ा ?
5. घर छोड़ कर चुलनी पिता पौषध शाला में क्यों रहने लगा था ?
6. चुलनी पिता ने अपने पुत्रों को मरते देखकर क्या सोचा था ?
7. चुलनी पिता अपनी माता को बचाने क्यों उठा था ?
8. देव द्वारा दिये गये उपसर्ग में जब चुलनी पिता विचलित हो गया , तब उसकी माता ने उसे क्या समझाया था ?

4

श्रावक सुरादेव

वाराणसी शाश्वत महत्त्व की नगरी रही है। वह पुण्य नगरी है, धर्मनगरी है और है ज्ञान नगरी। जैन, वैदिक, बौद्ध तीनों धर्मों का संगम वाराणसी में हुआ है।

अब से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व इस नगरी में सुरादेव नामक गाथापति रहता था। उन दिनों वाराणसी में राजा जितशत्रु का राज्य था। गाथापति सुरादेव की पत्नी थी धन्या। उसने अपने धन्या नाम को सार्थक किया था। धन्या तीन पुत्रों की माता और पतिव्रता सन्नारी थी। पति - पत्नी दोनों ही सद्संस्कारी थे। इन दोनों के भीतर धर्म के संस्कार विद्यमान थे, जो अभी अंकुरित नहीं हुए थे। एक दिन भगवान महावीर की धर्म देशना के अमृत जल की वृष्टि हुई तो पति-पत्नी के संस्कारों के अंकुरण का अनूठा अवसर बन गया था।

हजारों गायों के गोकुलों और करोड़ों की सम्पत्ति के स्वामी सुरादेव ने एक दिन सुना कि वाराणसी के बाहर कोष्ठक चैत्य में भगवान महावीर श्रमणों के साथ पधारे हैं। तब वह निर्ग्रन्थ ज्ञात प्रभु महावीर की देशना सुनने पत्नी धन्या के साथ पुहंच गया।

भगवान ने मानव जीवन की सार्थकता का महत्त्व बताते हुए कहा – यह जो कुछ दिखाई देता है, वह सब अनित्य है। यह सब नष्ट हो जायेगा, केवल धर्म ही नित्य, शाश्वत और सनातन है। जो व्यक्ति एक देशीय अणुव्रतों का भी पालन करते हैं, वे भी अपना कल्याण कर लेते हैं। जो श्रमण होकर

भी धर्म में दृढ़निष्ठा नहीं रखते, उन श्रमणों का कल्याण बड़े विलम्ब से होता है। अतः जो महाव्रतों का पालन नहीं कर सकते, वे श्रावक व्रतों का ही पालन करें; क्योंकि धर्म ही आत्मा का एक मात्र हितैषी है।

श्रमण भगवान महावीर की देशना के एक-एक शब्द को सुरादेव और धन्या ने बड़े ध्यान से सुना। देशना समाप्त होने पर सुरादेव ने भगवान से कहा –

"भन्ते, धर्म से रहित जीवन गंधहीन पुष्प, लवणहीन भोज़न और प्राणहीन देह के समान है, यह सब मैंने आपकी वाणी सुनकर जाना है। मैंने यह भी जाना है कि कर्मक्षय द्वारा जन्म-मरण से छूटने के लिए महाव्रतों का पालन अनिवार्य है। परन्तु प्रभो, मैं पूर्णतः चारित्र का पालन करने में स्वयं को असमर्थ पाता हूं। अतः मुझे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत–श्रावक के इन बारह व्रतों को ग्रहण करने की अनुमति दीजिए, जिससे मैं भी भवसागर पार करने वाला पथिक बन सकूं।"

"हे भव्य, जैसा करने में तुम्हारी आत्मा सुख का अनुभव करे, तुम वैसा ही करो।" अगली बात, भगवान बोले – "पर धर्मपालन में विलम्ब मत करो।"

सुरादेव और धन्या ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण कर लिये और वह निष्ठापूर्वक श्रावक धर्म का पालन करने लगा। उसका चिन्तन निर्मल होता गया। यह सम्पत्ति मेरे साथ नहीं जाएगी, यह सोचकर सुरादेव ने धन से आसक्ति त्याग दी और घर का समस्त भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया। अब उसे न तो व्यापार के हानि - लाभ से कोई मतलब रहा और न किसी के लेन -देन से। सुरादेव पौषधशाला में रहकर पूरा समय धर्म की आराधना करते हुए व्यतीत करने लगा।

एक बार सुरादेव पौषधशाला में ध्यानस्थ बैठा था। तभी एक देव उसे ध्यान से विचलित करने के विचार से आया। देव का रूप अतिशय डरावना था। उसकी आवाज भी बहुत भयंकर थी। भयंकर आवाज में ही देव ने श्रावक को चुनौती दी –

"हे मूढ़ श्रावक, आज अभी से तू मेरे आदेश से धर्म का ढौंग छोड़ दे। अगर तू मेरी बात नहीं मानेगा तो बहुत-बहुत पछतायेगा। मैं तेरे सामने ही एक-एक करके तेरे तीनों पुत्रों की हत्या कर, उनके मान्स पिंडों को उबलते तेल में डालूंगा। इस तरह तुझे पुत्र शोक दूंगा। यदि तू नहीं मानेगा तो फिर तुझे भी खौलते तेल में डालूंगा, तब तू तड़प-तड़प कर मरेगा।"

देव की चुनौती पर सुरादेव ने जरा भी ध्यान नहीं दिया। वह ध्यान में अविचल बैठा रहा। अब

मैं तुम्हें महारोगों से पीड़ित कर दूँगा।

तो देव को बहुत ही क्रोध आया। वह सबसे पहले सुरादेव के बड़े पुत्र को ले आया और उसके टुकड़े - टुकड़े कर डाले, फिर उन्हें उबलते तेल में डाल दिया। यह सब उसकी माया थी। इसके पश्चात् उसने कड़ाह का खौलता तेल सुरादेव पर भी उँड़ेल दिया। सुरादेव को अकथनीय कष्ट हुआ, पर वह ध्यान से विचलित नहीं हुआ। देव और भी क्रुद्ध हुआ। उसने सुरादेव के शेष दोनों पुत्रों के साथ भी ऐसा ही किया, जैसे बड़े पुत्र के साथ किया था। तीनों पुत्रों के मरने और तीनों बार खौलते तेल की पीड़ा भोगने के बाद भी सुरादेव की धर्मनिष्ठा अडिग बनी रही।

देव सोचने लगा – अब कौन सा उपाय करूं जिससे सुरादेव विचलित हो जाए। काफी देर सोचने के बाद देव ने निर्णय लिया – मनुष्य कष्टसाध्य, असाध्य रोगों की भयंकरता से अवश्य घबरा जाएगा। ऐसा सोचकर उसने सुरादेव को फिर एक और चुनौती दे डाली –

"सुरादेव! मैं तुझे ऐसे भयंकर रोग एक साथ दूंगा कि तू जीवनभर तड़पता रहेगा। रोगों से दुःखी होकर तू मृत्यु की कामना करेगा, पर तुझे न तो मौत आयेगी और न तुझे रोग ही छोड़ेंगे।

"सुरादेव! मैं तुझे श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षीशूल, भगन्दर, अर्श, अजीर्ण, दृष्टिरोग, मस्तकशूल, अरुचि, अक्षिवेदना, कर्णशूल, उदररोग, खुजली और कुष्ठ सोलह रोग दूंगा। इनमें से कोई एक रोग ही तेरा जीना दूभर कर देगा। तू कल्पना कर कि जब सोलहों रोग तुझे जकड़ेंगे, तब कष्ट का सिलसिला तू सह सकेगा।"

रोगों के नाम सुनते ही सुरादेव विचलित हो गया। उसने निश्चय किया कि देव मुझे रोगों से ग्रसित करे, उससे पहले ही मैं इसे पकड़कर क्यों न मार दूं। यह सोचते ही सुरादेव अपने आसन से उठा और देव को पकड़ने के लिये उद्यत हुआ। देव तभी अन्तर्धान हो गया। देव के भ्रम में सुरादेव ने पौषधशाला के एक खम्बे को पकड़ लिया और जोर-जोर से चीखने लगा।

उसकी चीख सुकर उसकी पत्नी धन्या वहां आयी। वह चकित होकर पूछने लगी –

"आप इतने परेशान क्यों हैं और इस खम्बे को क्यों पकड़े हुए हैं?"

पत्नी को पास देखकर सुरादेव कुछ संयत हुआ और देव द्वारा निर्मम तरीके से पुत्रों की हत्या का वृत्तान्त सुनाया। तब धन्या बोली –

"स्वामी! आपको देव ने एकदम भ्रमित कर दिया है। हमारे तीनों पुत्र सुरक्षित हैं। देव की बातों में आकर आप धर्म-ध्यान से विचलित हो गये हैं। अब आप अपनी भूल की आलोचना करके

प्रायश्चित्त करें और पुनः स्थिर चित्त से पौषधव्रत में ध्यान लगाइए।

सुरादेव ने अपनी भूल की आलोचना की।

कालान्तर में उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं धारण कीं। अन्त में उसने अपना आयु समय निकट जाना तो संलेखना-संथारा किया और समधिमरण प्राप्त करके सौधर्म - कल्प में अरुणकान्त विमान में चार पल्योपम की आयु का देव बना। देव गति की लम्बी आयु को पूर्ण करके वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर महाव्रतों की साधना करके मोक्ष के शाश्वत पद को प्राप्त करेगा।

सारांश

- भय की संभावना अंधकार में होती है, प्रकाश में भय हो ही नहीं सकता। बाह्य जगत का अंधकार प्रकाश का अभाव है और अन्तर्जगत का अन्धकार अज्ञान है। देव द्वारा सुरादेव के पुत्रों को मार देने की धमकी से सुरादेव विचलित नहीं हुआ, इसका कारण सुरादेव के भीतर ज्ञान का यह प्रकाश आलोकित था कि आयुष्य पूर्ण होने से पूर्व कोई किसी को नहीं मार सकता।
- कुछ समय के लिए जैसे बादलों से सूर्य ढक जाता है, इसी तरह साधक के भीतर भी ज्ञान का प्रकाश कभी-कभी लुप्त हो जाता है। अतः देव ने जब सुरादेव के शरीर को रोगी कर देने की धमकी दी तो वह विचलित हो गया। अज्ञानवश वह यह भूल गया –'मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर तो जड़ है। मैं तो आत्मा हूँ और आत्मा को कोई रोगी नहीं बना सकता।'
  सुरादेव की पत्नी धन्या उसकी पथप्रदर्शिका बनी और उसने आलोचना करके स्वयं को शुद्ध करने की प्रेरणा दी।
- भयमुक्त होने के लिए ज्ञानरूपी प्रकाश को अक्षुण्ण करने की आवश्यकता है और इसके लिए आवश्यक है, धर्म के सिद्धान्तों पर अटूट विश्वास और अबाधित धारणा।
- शरीर आत्म-साधना के लिए सहयोगी है, उसे स्वस्थ/नीरोग रखना उचित भी है, पर हम शरीर नहीं, आत्मा हैं। इस तरह देहातीत होने की प्रेरणा देती है सुरादेव की कथा!

शब्दार्थ

गोकुल = गायों का समूह। **चारित्र** = आत्मशुद्धि के लिये किया जाने वाला उपक्रम। **समाधिमरण** =

श्रुत-चारित्र धर्म में स्थिर रहते हुए निर्मोह भाव में मृत्यु। श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षीशूल, भगन्दर, अर्श, अजीर्ण, दृष्टिरोग, मस्तकशूल, अरुचि, अक्षिवेदना, कर्णशूल, उदररोग, खुजली, कुष्ठ – इन रोगों के बारे में अपने अध्यापक से जानकारी कीजिए।

अभ्यास

1. बनारस, वाराणसी और काशी एक ही नगरी के नाम हैं। भारत में वाराणसी का क्या विशिष्ट महत्व है ? इसे धर्मों का केन्द्र क्यों कहते हैं ?
2. मानव जीवन की सार्थकता किस बात में छिपी है ?
3. गन्धरहित पुष्प और धर्मरहित जीवन इसे अपने शब्दों में समझाइये।
4. रोग और महारोग में क्या अन्तर है ?
5. सुरादेव एवं अन्य श्रावकों के चरित्र में क्या अन्तर है ?
6. मोक्ष के बारे में आप क्या जानते हैं ?
7. सिद्धत्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य जन्म लेना क्यों आवश्यक है ?

5

श्रावक चुल्लशतक

आलभिका नगरी में जितशत्रु राजा का राज्य था। इस नगर में महावीर का परम भक्त श्रावक चुल्लशतक भी रहता था। जैसा उसे जिन धर्म में प्रशस्त अनुराग था, वैसा ही अनुराग उसकी पत्नी बहुला को भी था। दोनों ने भगवान महावीर से पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार दोनों ने ही बारह व्रत ग्रहण किये थे। इनके तीन पुत्र थे। तीनों आज्ञापालक थे। सम्पत्ति इतनी थी कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपभोग करने पर भी समाप्त नहीं हो सकती थी।

चुल्लशतक ने अपनी उम्र का सत्य पहचाना। ज्येष्ठ पुत्र को घर व व्यवसाय संभलवाकर पौषधशाला में एकाग्र मन से धर्माराधन करने लगा।

धर्म की आराधना, तपस्या, व्रत-नियम संयम थे और इस तरह के अन्य अनेक अनुष्ठान सभी कुछ मनुष्य भव में ही संभव हैं। देव और नारक गति में इन सब की संभावना तक का अभाव होता है। यही कारण है बहुधा देवेन्द्र मानव में प्रज्वलित धर्म ज्योति को देख व्रत न कर सकने के अभाव में तापस के सत्य व्रत की अनुशंसा करते हैं। मिथ्या दृष्टि देव और सम्यक् दृष्टि देव– दोनों प्रकार के देव होते हैं। सम्यक् दृष्टि देव विशिष्ट साधकों की प्रशंसा सुन गुणानुरागी की तरह प्रसन्न होते हैं। मिथ्यादृष्टि देवों को सत्य-साधक की प्रशंसा नहीं सुहाती। वे तुरन्त धरती पर आते हैं और मनुष्य की तपस्या साधना आदि की परीक्षा लेने लगते हैं।

एक बार चुल्लशतक श्रावक पौषधशाला में ध्यान लीन था। एक देव परीक्षा लेने आ पहुंचा। ध्यान में बैठे चुल्लशतक से कहने लगा –

"अरे मूढ़ श्रावक! तू व्रत और प्रत्याख्यान की उपलब्धि चाहता है न? पर इस पौषधव्रत से च्युत होना तेरे लिये कल्पनीय नहीं है। मगर सुन आज से तुझे धर्म के समस्त ढोंग छोड़ने होंगे। अगर तू अपने ध्यानासन से नहीं उठेगा तो मैं एक-एक करके तेरे तीनों पुत्रों को तेरे ही सामने मार डालूंगा और उबलते तेल के कड़ाह में भून दूंगा। फिर बचे उबलते तेल को तेरे ऊपर डालूंगा, जिससे तू तड़प-तड़प कर मरेगा।"

चुल्लशतक ने देव की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। देव क्रुद्ध हो उठा और उसने चुल्लशतक के ज्येष्ठ पुत्र को उसके सामने ही उबलते तेल के कड़ाह में डाल दिया। उसके शव के टुकड़े किये और कड़ाह का तेल चुल्लशतक के शरीर पर उँड़ेल दिया, चुल्लशतक वेदना से छटपटाया, पर ध्यानासन से फिर भी नहीं डिगा। चुल्लशतक को चलायमान करना एक तरह से देव ने अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। उसने एक-एक करके चुल्लशतक के शेष दोनों पुत्रों की भी वही दुर्गति की जो पहले पुत्र की की थी। चुल्लशतक इतने पर भी अचल रहा। अब देव ने श्रावक को फिर चुनौती दी –

"अरे मूढ़ तू बड़ा निर्मोही और वज्र हृदय का है। अपने पुत्रों की पीड़ा दायक मृत्यु से भी तू विचलित नहीं हुआ। अब मैं तेरे समस्त धन और स्वर्ण मुद्राओं को आलभिका नगरी के चौराहों और गलियों में इधर-उधर बिखरा कर तुझे धनहीन कर दूंगा। तब तू दर-दर का भिखारी बन कर ठोकरें खाता फिरेगा।"

देव की इस चुनौती से चुल्लशतक के मन में चिन्ता जागृत हो गई। वह सोचने लगा – दरिद्रता जीवन का सबसे बड़ा दुःख है। मैंने पुत्रों का शोक तो सहन कर लिया, पर दरिद्रता का क्लेश सहन नहीं कर पाऊंगा। इस बार देव को रोकना ही होगा।

तभी देव ने अपनी माया से करोड़ों स्वर्ण मुद्राएं एवं आभूषण चुल्लशतक को दिखाते हुए कहा –"चुल्लशतक! मैं तेरी इन स्वर्णमुद्राओं को फैंकने जा रहा हूं।" देव जैसे ही स्वर्णमुद्राओं को लेकर चला कि चुल्लशतक अपने आसन से उठा और उसने देव को पकड़ना चाहा। वह चिल्लाने लगा – "अब मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूंगा।" सच यह था कि चुल्लशतक एक खम्बे को पकड़े हुए चीख रहा था। चीख सुनकर उसकी पत्नी बहुला वहां आई और पति को देखकर खिलखिलाकर हंस पड़ी। बोली, "अरे आप इस खम्बे को क्यों पकड़े हैं और इतनी जोरों से चीख क्यों रहे हैं?"

श्रावक चुल्लशतक का धन ले जाते हुए देव।

चुल्लशतक ने अपनी पत्नी बहुला से कहा –"बहुला, मैंने तो एक देव को पकड़ा था। देव जाने कहां भाग गया ? बहुले, देव ने हमारे तीनों पुत्रों को मेरे सामने ही खौलते तेल के कड़ाह में डालकर यमलोक पहुंचा दिया और अब वह मेरे धन का हरण करके ले जा रहा था, तभी मैंने उसे पकड़ा।"

"स्वामी! आपने बहुत बड़ा धोखा खाया है।" बहुला ने चुल्लशतक से कहा –" हमारे तीनों पुत्र तो घर पर सुखपूर्वक सो रहे हैं। उनका तो बाल भी बाँका नहीं हुआ है। भ्रम में पड़कर आप धर्म से डिग गए हैं। अतः अपने इस दोष की आलोचना करके पुनः धर्म में स्थिरता लाओ।"

चुल्लशतक को पत्नी की बात सुन गहरा पश्चात्ताप हुआ। उसने विधिपूर्वक अपने दोष का प्रायश्चित्त किया और फिर से ध्यान में स्थिर हो गया। इस प्रायश्चित्त के बाद कालान्तर में चुल्लशतक ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं धारण कीं। इस प्रकार बीस वर्ष तक उसने श्रावक व्रतों का पालन किया और अन्त में एक महीने का अनशन करके मृत्यु का वरण किया। आयुष्य पूर्ण करके चुल्लशतक सौधर्म कल्प के अरुण विष्ट विमान में देव बना। देवभव आयु पूर्ण करके वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। महाव्रतों का पालन करेगा और श्रमणचर्या द्वारा मोक्ष प्राप्त करेगा।

सारांश

- 'धन में सुख रहता है' यह धारणा एक भ्रान्ति है। धन सामान बढ़ाने/सुविधाएं जुटाने का माध्यम तो है, पर सुख-शान्ति, आनन्द, चिन्ता राहित्य यह सब धन से संभव नहीं है। दुःख का कारण धन का नाश नहीं है, धन के प्रति आसक्ति ही दुःख का कारण है। जब व्यक्ति के जीवन में धन की उपयोगिता के स्थान पर उसका मूल्य और उसकी आसक्ति बढ़ जाती है, तभी वह भयभीत हो उठता है। चुल्लशतक का कथानक इस सत्य का साक्षी है।
- चुल्लशतक पुत्रों के वध की धमकी से विचलित नहीं हुआ, क्योंकि उसको भी यह अबाधित ज्ञान था कि अजर-अमर आत्मा की मृत्यु नहीं होती और शरीर का नाश भी आयुपूर्व कोई नहीं कर सकता। लेकिन धननाश के भय से वह विचलित इसलिए हो गया कि उसके मन में धन के प्रति आसक्ति अभी शेष थी।
- प्रत्यक्ष में देखा जाता है धनहीन/निर्धन सुख की नींद सोते हैं और धनी चिन्ता से बेचैन करवटें बदलते हैं। धन में सुख नहीं है, देव धननाश करके भी चुल्लशतक का सुख नहीं छीन सकता था, यह सिद्धान्त विस्मृत हो जाने के कारण ही वह विचलित हुआ। यहाँ भी उसकी पत्नी ने उसका मार्गदर्शन कर दिया।

¤ धनासक्ति को जीतकर चुल्लशतक श्रावक श्रेष्ठ कहलाया और उसने अपनी साधना पूर्ण की।

शब्दार्थ

कषाय = क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों विकारों का समूह। **परभाव** = आत्मा से भिन्न अन्य वस्तुओं का गुण/स्वभाव। **विरमण** = विशेष रूप से त्याग। **च्युत** = गिर जाना। **शील** = आचरण/मर्यादा। **व्रत** = नियम।

अभ्यास

1. चुल्लशतक की पारिवारिक स्थिति का वर्णन करो।
2. पौषध व्रत में देव ने अपनी माया से उसे क्या-क्या दृश्य दिखाया ?
3. चुल्लशतक के पुत्र जीवित रहे या मृत्यु को प्राप्त हुए ?
4. श्रावक जोर-जोर से क्यों चिल्लाने लगा ?
5. बहुला के हंसने का क्या कारण था ?
6. चुल्लशतक पुत्रों की मृत्यु से विचलित नहीं हुआ। आखिर ऐसा क्या कारण था कि वह क्रोध में देव को पकड़ने दौड़ा ?
7. चुल्लशतक भ्रम का शिकार कैसे हुआ था ?
8. चुल्लशतक ने एक महीने का अनशन क्यों किया था ?
9. पुत्र-मोह, शरीर-मोह , धन- मोह, तीनों में से उसे किसने विचलित किया ?

6

तत्त्वदर्शी कुण्डकौलिक

कुण्डकौलिक गाथापति धनी एवं सम्पन्न गृहस्थ था। वह कम्पिल पुर नगर में रहता था। गांव के बाहर सहस्राम्रवन में कुण्डकौलिक ने भगवान महावीर की देशना अपनी पत्नी पूषा के साथ सुनने के बाद भगवान से श्रावक के बारह व्रतों को ग्रहण कर लिया।

एक बार दोपहर के समय कुण्डकौलिक अपनी वाटिका में धर्म क्रियाएं करने बैठा था कि तभी एक देव ने आकर उससे कहा –

"कुण्डकौलिक! तू क्यों अपने समय को नष्ट कर रहा है? महावीर की वाणी और उनका मार्ग तुम्हारा कल्याण नहीं कर सकता, क्योंकि वह मिथ्या है। सत्य और कल्याणकारी मार्ग तो मंखलिपुत्र गोशालक का नियतिवाद है। तुम्हारी साधना में अनिश्चय तथा गोशालक के नियतिवाद में तो आदि से अन्त तक निश्चय ही निश्चय है।"

पाठक यहां जानना चाहेंगे – गोशालक कौन था और उसका नियतिवाद सिद्धान्त क्या था। इस सम्बन्ध में प्रसंगवशात् तुम पहले समझ लो।

भगवान महावीर का ही एक शिष्य था – गोशालक। वह काफी समय से भगवान महावीर के साथ ही रहता था। एक बार भगवान ने एक तिल के पौधे को देखकर गोशालक से उसके भविष्य के बारे में बताया – इस पौधे पर सात फल आयेंगे और शेष नष्ट हो जाएंगे। गोशालक को भगवान की

बात पर विश्वास न आया। उसने भगवान की बात को मिथ्या सिद्ध करने के लिए उस पौधे को ही उखाड़ दिया। लेकिन पौधा फिर भी उगा और उसमें प्रभु के कथनानुसार ही फल लगे।

संयोग की बात है उसी मार्ग से जाते हुए गोशालक ने उस पौधे को देखा। सचमुच उसमें वही सब देखा जो भगवान ने उसे बताया था। इस घटना से गोशालक भ्रम में पड़ गया।

गोशालक ने कहा –

"भगवन्! जो कुछ होना है, वह होगा ही। इस अवश्यम्भावी होनहार को ही तो नियति कहते हैं। अतः आपका कर्म सिद्धान्त मिथ्या है, नियति ही सब कुछ है। जब नियति को बदला ही नहीं जा सकता, तो पुरुषार्थ, साधना और संयम का कोई अर्थ नहीं है।"

इस पर भगवान ने गोशालक को समझाया – "गोशालक! नियति के पीछे भी कर्म और पुरुषार्थ है। नियति बनने का भी कोई आधार होता है। गोशालक नियति भी हमारे कर्मों के अनुसार नियत होती है। तुम्हारा पुरुषार्थहीन नियतिवाद चिंतन मनुष्य को अकर्मण्य बना देगा। पुरुषार्थ व साधना से ही दूसरे भव में आत्मा को स्वस्थ शरीर, अनुकूल वातावरण और मनुष्य योनि मिलती है। पुरुषार्थ से ही मोक्ष मिलता है। अतः नियति न तो धर्म है, न साधना और न हमारा लक्ष्य है। नियति हमारी धर्मसाधना में बाधक नहीं बननी चाहिए।"

इस प्रकार महावीर ने गोशालक को कई तर्कों व प्रमाणों से समझाया, पर गोशालक ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। अंधेरे के कारण व्यक्ति को रस्सी में सर्प की भ्रान्ति या विपरीत निश्चय हो जाता है, ठीक वैसे ही गोशालक को भी अपने अज्ञान के कारण उसे कर्म सिद्धान्त के स्थान पर नियतिवाद की भ्रान्ति हो गई। इस भ्रान्ति या विपरीत निश्चय का कारण अज्ञान तो है ही, दूसरा कारण है दो वस्तुओं की समानता। जैसे रस्सी और सांप की आकृति मिलती - जुलती है। अतः अंधेरे में यदि रस्सी पड़ी हो तो सर्प की भ्रान्ति हो जाती है, कोई अन्य वस्तु पड़ी हो तो सर्प की भ्रान्ति नहीं होती। इसी प्रकार कर्मफल की नियति और होनहार नियति की निश्चितता में समानता होने के कारण गोशालक को यह भ्रम हो गया कि नियति ही सत्य है। साधना या पुरुषार्थ की बातें व्यर्थ हैं।

भगवान महावीर का गोशालक शिष्य था, परन्तु उसने उनका साथ छोड़ दिया और वह उनका कट्टर विरोधी बन गया। उसने एक नया सम्प्रदाय आजीवक नाम से चलाया। वह महावीर के धर्म की निन्दा और खण्डन करने लगा। कुछ लोग उसके समर्थक हो गए। वह चमत्कारों से भी लोगों को आकर्षित करने लगा।

तो, कुण्डकौलिक के सामने उपस्थित हुआ देव, गोशालक के नियतिवाद सिद्धान्त की प्ररूपणा करते हुए कह रहा था – "तुम गोशालक के सिद्धान्त को स्वीकार कर लो। वह कल्याणकारी मार्ग है।"

देव की बात सुनकर कुण्डकौलिक मुस्काया और बोला–

"यदि तुम सत्य की खोज करके यह जानना चाहते हो कि नियतिवाद और पुरुषार्थ वाद में कौन सत्य है तो पूर्वाग्रह रहित होकर मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।"

देव ने कहा – "मैं तुम्हें समझाऊंगा कि गोशालक का मार्ग सत्य है और महावीर का असत्य।"

कुण्डकौलिक ने देव से पूछा –"यदि गोशालक का नियतिवाद ही अन्तिम और यथार्थ सत्य है तो तुम्हें देवभव कैसे प्राप्त हुआ ? क्या देव-ऋद्धि, देव-वैभव और देवभव प्राप्त करने से पहले तुम्हें पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा था ? धर्म-बल के बिना तुम देव कैसे बन गए ?

अपनी बात को सत्य प्रमाणित करने के लिए देव ने कुण्डकौलिक को उत्तर देते हुए कहा –

"देव होना मेरी नियति थी। नियतिवाद के आधार पर ही मैं देव बना हूं। मुझे कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा।"

"यदि ऐसा ही है तो वृक्ष, लता आदि देवभव क्यों नहीं प्राप्त करते हैं ? कुण्डकौलिक ने कहा – "इसके अलावा जितने भी एकेन्द्रिय जीव हैं, वे सभी क्यों देव नहीं बन जाते ? अतः हे देव, मनुष्य जब धर्म-साधना का पुरुषार्थ करता है, तभी देव होना उसकी नियति बनती है।"

इस पर कुण्डकौलिक के तर्क का देव कोई उत्तर नहीं दे पाया। वह सोचने लगा – इसका उत्तर गोशालक के पास अवश्य होगा। लेकिन यदि गोशालक भी इसका उत्तर न दे पाया तो केवल महावीर से मैं पुछूंगा पर मुझे तो दोनों के ही तर्क सही लगे, क्योंकि महावीर और गोशालक दोनों ही अपने-अपने सिद्धान्तों के विवेचक और प्रतिपादक हैं।

देव यह सोच ही रहा था कि उसके मन की दुविधा जानकर कुण्डकौलिक ने कहा –

"सत्य का निर्णय तो तुम्हें अपने विवेक से ही करना पड़ेगा। सत्य खोज के द्वारा जान जाता है। खोज स्वयं ही करनी पड़ती है। जो नियति, पुरुषार्थ का खण्डन करती हो, वह जीवन को निष्क्रिय बनाती है और जो पुरुषार्थ नियति का समर्थन करता है, वह जीवन को ऊपर उठाता है।"

कुण्डकौलिक द्वारा देव से संवाद।

देव ने कुण्डकौलिक द्वारा कहे तर्कों को मान लिया और वापस लौट गया।

कुछ दिनों बाद भगवान महावीर फिर से कम्पिलपुर नगर में पधारे। सहस्राम्रवन में ठहरे। कुण्डकौलिक भगवान की वन्दना करने गया। भगवान महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। वे जानते थे कि कुण्डकौलिक की देव से क्या बातचीत हुई थी और उसका क्या परिणाम निकला था। दूसरे लोग भी जानें, इसलिए भगवान ने बातचीत का पूरा इत्तिवृत्त कुण्डौलिक के मुख से सुना और फिर श्रमणों से कहा –

"गृहस्थ साधक भी जब अपने तर्कों से सत्य और सद्धर्म का प्रतिपादन करके किसी की भ्रान्ति का निवारण कर जीवन को सत्पथ पर ला सकता है तो श्रमणों की तो बात ही कुछ और है, क्योंकि श्रमण द्वादशांगी वाणी के ज्ञाता होते हैं। अतः श्रमणों को असत्य के खण्डन और सत्य के मण्डन में अवश्य ही कुशल होना चाहिए।"

भगवान के इस उद्बोधन को समस्त श्रमणों ने ग्रहण किया। कुछ दिनों बाद भगवान कम्पिल पुर नगर से अन्यत्र विहार कर गए।

कुण्डकौलिक अब विशेष रूप से धर्म की ओर उन्मुख हुआ। घर और व्यापार का भार उसने अपने बड़े पुत्र को सौंप दिया। स्वयं उसने सबसे मिलना - जुलना बन्द कर दिया और पौषधशाला में कायोत्सर्ग आदि धर्मक्रियाएं करने लगा। अनशन करके उसने 'सहज मृत्यु' प्राप्त की। वह अरुणध्वज विमान में देव बना। कालान्तर में वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और महाव्रतों का पालन कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

- होनहार होकर रहती है, उसे कोई नहीं टाल सकता, प्रकृति के इस विधान को 'नियति' कहते हैं। नियति के इस सिद्धान्त को मानकर हाथ-पर-हाथ रखकर बैठना नियतिवाद का सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त/वाद का पोषक/संस्थापक भगवान महावीर का पूर्व शिष्य गोशालक था। नियतिवाद को प्रकृतिवाद भी कहते हैं।
- आत्मा/जीव प्रकृति-नियति के सहारे निष्क्रिय बनकर बैठा नहीं रह सकता। आत्मा/जीव कर्म, उत्थान, पुरुषत्व, बल वीर्य से उच्च से उच्चतर और उच्चतम श्रेणी को प्राप्त कर सकता है, भगवान महावीर इस 'पुरुषार्थवाद' के समर्थक और संस्थापक थे।

- कुण्डकौलिक को भगवान महावीर के पुरुषार्थवाद का अबाधित ज्ञान था और उसपर अटूट विश्वास भी। अँधेरे में सर्प दिखने वाली रस्सी प्रकाश होने पर रस्सी ही रह जाती है। इसी ज्ञान के आधार पर कुण्डकौलिक ने देव को अपने सुलझे हुए तर्कों से निरुत्तर करके गोशालक के नियतिवाद को निरस्त-निस्तेज और मिथ्या सिद्ध कर दिया था।
- कथा का कथ्य यह है कि यदि सत्य सिद्धान्त का ज्ञान अबाधित/असंदिग्ध हो तो कोई भी मिथ्यावादी साधक को भ्रमित नहीं कर सकता, उल्टे साधक ही मिथ्यावादी को निरुत्तर कर देता है।

शब्दार्थ

नियति = जो अपने आप, स्वयं से घटित होना है, जिसे कोई रोक नहीं सकता।**नियतिवाद** = नियति का सिद्धान्त।**कर्म** = आत्मा की सत् -असत् प्रवृत्तियों से आकृष्ट एवं कर्मरूप में परिणत होने वाले पुद्गल विशेष। **प्ररूपणा** = कथन करना।**द्वादशांगी** = गणधरों द्वारा तीर्थंकरों की वाणी का संकलन अंग कहलाता है। ये अंग या संकलन बारह हैं, अतः द्वादशांगी कहे जाते हैं। जैसे देह के हाथ-पैर, जंघा आदि अंग हैं, वैसे ही श्रुत - पुरुष के बारह अंग हैं। ये इस प्रकार से हैं –

१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग , ३. स्थानांग , ४. समवायांग, ५. विवाह पद्धति , ६. ज्ञाताधर्म कथांग, ७. उपासकदशांग, ८. अन्तकृद्दशा, ९. अनुत्तरोपपातिक, १०. प्रश्न व्याकरण, ११. विपाक और १२. दृष्टिवाद।

साधना = श्रेष्ठ आचरण।**पुरुषार्थ** = किसी कार्य की सिद्धि के लिए किया जाने वाला परिश्रम।**एकेन्द्रिय जीव**= जिन जीवों को मात्र शरीर (स्पर्श) रूप एक ही इन्द्रिय प्राप्त है;वृक्ष।**पुरुषार्थवाद** = पुरुषार्थ का सिद्धान्त।**उद्बोधन** = शिक्षा या ज्ञान देना।

अभ्यास

1. कुण्डकौलिक को देव ने क्या कहा था ?
2. गोशालक कौन था और उसकी क्या मान्यता थी ?
3. भगवान महावीर के पुरुषार्थवाद की व्याख्या करो।
4. क्या बिना पुरुषार्थ किये विद्यार्थी को विद्या आ सकती है ? इस पर अपने विचार लिखो।
5. श्रमणों को, गृहस्थों से विशेष तर्कशील होना चाहिए, भगवान महावीर ने यह क्यों कहा था ?
6. खण्डन - मण्डन से आप क्या समझते हैं ? लिखकर स्पष्ट करो।

7

सत्यान्वेषी शकडालपुत्र

पोलासपुर नगर में राजा जितशत्रु का राज्य था। वहां शकडालपुत्र नाम का एक कुम्भकार रहता था। उसकी पत्नी का नाम अग्निमित्रा था। कुम्भकार शकडाल परम्परानुसार मिट्टी के बर्तन बनाने और बेचने का काम करता था। पूर्व जन्म के पुण्य के उदय से वह इसी काम को करते हुए धनी बन गया। उसके पास कई करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की चल-अचल सम्पत्ति हो गई। वह हजारों गायों को भी पालने लगा। इतना बड़ा सेठ और व्यापारी होते हुए भी उसने परंपरा से होते आ रहे बर्तनों के काम को नहीं छोड़ा। लेकिन अब बर्तन बनाने, पकाने और बेचने का काम उसके नौकर करते थे। बर्तनों के बेचने बनाने की उसकी सैंकड़ों दुकानें पोलासपुर नगर के बाहर भी हो गई थीं।

शकडालपुत्र गोशालक के आजीवक सम्प्रदाय का अनुयायी था। नियतिवाद पर उसकी अटूट आस्था थी। इसके बावजूद उसके अन्तर में सत्य को जानने की जिज्ञासा बनी रहती थी।

एक बार शकडाल पुत्र अपनी गृहवाटिका में दोपहर के समय धर्म-साधना कर रहा था। उसी समय आकाश से एक आकर्षक देव प्रकट हुआ। उसने शकडाल पुत्र से कहा –

"शकडाल ! शीघ्र ही तुम्हारे नगर में त्रिकालज्ञ, सर्वदर्शी और लोकपूज्य पुरुषोत्तम पधारने वाले हैं। वे दानव देव मानव तिर्यंच आदि के द्वारा वन्दनीय हैं। उनके दर्शन करके, उनकी वाणी सुनकर और उनको पीठ, फलक, शय्या आदि देने का निवेदन करके तुम अपने को कृतकृत्य

अवश्य करना।"

इतना कहते ही देव अन्तर्धान हो गया। उसने यह कथन बार-बार दुहराया था। अतः शकडालपुत्र समझ भी नहीं पाया कि देव किसके बारे में कह रहा है। फिर, उसने विचार किया कि देव ने जो जो लक्षण बताये हैं, वे सब लक्षण तो मेरे धर्माचार्य मंखलिपुत्र गोशालक में ही घटित होते हैं। निश्चय ही पोलास पुर में मेरे धर्माचार्य गोशालक का आगमन होगा।

यह सोचकर शकडाल पुत्र मन-ही-मन बहुत खुश हुआ। वह गोशालक के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन दूसरे ही दिन शकडाल पुत्र की सब आशाओं पर पानी फिर गया, क्योंकि पूरे नगर में यह समाचार फैल गया कि श्रमण भगवान महावीर पोलासपुर पधार रहे हैं।

भगवान महावीर पोलासपुर के सहस्राम्रवन में पधारे। हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष भगवान के समवसरण में जाने लगे। शकडालपुत्र का उत्साह यह सुनकर ठंडा पड़ गया कि गोशालक के स्थान पर महावीर आये हैं, लेकिन उसके मन में विचार आया कि देव ने जिन को सर्वदर्शी, त्रिकालदर्शी और लोकपूज्य बताया था, चलकर देखना चाहिए क्या महावीर वैसे ही त्रिकालदर्शी और लोकपूज्य हैं, जैसा देव ने बताया था। उन्हें देखकर ही उनकी तुलना पूज्य गोशालक से कर सकूंगा।

उत्सुकता लिये शकडाल पुत्र सहस्राम्रवन में पहुंच गया। उसने भगवान महावीर की विधिपूर्वक वंदना की और सभा में बैठकर उनकी देशना सुनने लगा। देशना के समय वह बड़े असमंजस और ऊहापोह में पड़ गया, क्योंकि जो बातें भगवान महावीर अपने मुखारविंद से फरमा रहे थे, वे गोशालक के सिद्धान्त को काटती थीं। वह बार-बार सोचता था कि मैं किसको सत्य मानूं, गोशालक के कथन को यथार्थ मानूं या महावीर की वाणी को सत्य मानूं?

शकडाल पुत्र के मन के भावों को समझकर भगवान महावीर ने उससे कहा—"देवानुप्रिय! तुम बड़ी दुविधा में पड़ गये हो। तुम्हारे मन में गोशालक के आने की कल्पना उभरी थी। तुम उत्सुकता और जिज्ञासा के कारण यहां आये हो। मेरी बातों की तुलना गोशालक की बातों से कर रहे हो और यह निश्चय नहीं कर पा रहे हो कि पुरुषार्थवाद और नियतिवाद में कौन-सा वाद/सिद्धान्त सत्य है।"

भगवान द्वारा सब कुछ जान लेने पर शकडाल पुत्र उनकी महिमा से प्रभावित हुए बिना न रह सका। बार-बार नमन करते हुए बोला—

"भन्ते, आपने यथार्थ ही कहा है। आप अन्तर्यामी हैं। देव ने जैसा कहा, वैसा ही पाकर, सुनकर

मैं चकित और हर्षित हूं।" और तभी शकडाल पुत्र अपने स्थान से उठा, भगवान के निकट पहुंचा।

वन्दन कर कहने लगा – "प्रभो पोलासपुर नगर के बाहर मेरी बर्तनों की दुकानें हैं। आप वहां पधारें। वहां प्रातिहारिक पीठ, फलक आदि स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करें।"

भगवान महावीर ने शकडाल पुत्र की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे उसके साथ उसके बर्तनों की दुकानों पर पहुंचे। वहां ठहरने का अनुकूल स्थान था। भगवान वहां रुके। उस समय वहां मिट्टी के बर्तनों का निर्माण हो रहा था। मिट्टी से बने कुछ बर्तन धूप में सूख रहे थे। उनकी ओर संकेत करते हुए भगवान ने शकडालपुत्र से पूछा –

"ये पात्र किस तरह बनाये गए?"

"प्रभो, मिट्टी को कूटकर पानी में रौंधा गया। इसके पश्चात् चाक पर मिट्टी को आकृतियां देकर ये पात्र बने हैं, फिर इन्हें आग में तपाकर पक्का किया गया है।"

तब भगवान ने कहा – देवानुप्रिय! इस पूरी प्रक्रिया में उत्थान, बल व कर्म का प्रयोग हुआ है या इनका बनना नियति थी?"

अपने संस्कार बद्ध सिद्धान्त की रक्षा करते हुए शकडाल पुत्र ने उत्तर दिया – "प्रभो, सब पदार्थ नियत हैं। इस मिट्टी की यही नियति थी। अतः इनके निर्माण में उत्थान, बल, कर्म आदि का कोई योग नहीं है।"

पुराने लिखे को मिटाने में समय लगता है। यह निश्चय कर भगवान ने दूसरा प्रश्न किया– "शकडाल पुत्र! यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे इन मिट्टी के पात्रों को तोड़ दे, तुम्हारी पत्नी अग्निमित्रा के साथ अभद्र व्यवहार करने लगे तो ऐसी स्थिति में तुम क्या करोगे?"

शकडाल पुत्र ने कहा – वही करूंगा, जो करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को मैं गालियां दूंगा। उसे मारूंगा और उसके प्राण भी ले लूंगा।"

भगवान महावीर ने शकडाल पुत्र के इसी उत्तर के द्वारा समझाने के विचार से फर्माया –

"देवानुप्रिय! तुम तो सब को नियति के अन्तर्गत नियत मानते हो। तुम सारे भावों और कार्यों को नियत मानकर उत्थान, बल, कर्म का कोई योग ही नहीं मानते। फिर कोई व्यक्ति न तो तुम्हारे पात्रों को तोड़ता है और न तुम्हारी पत्नी के साथ बल प्रयोग करता है तथा तुम भी न तो किसी को गाली देते हो, न मारते हो और न किसी के प्राण लेने का प्रयास करते हो। तब बताओ पात्रों को तोड़ने वाले,

भगवान् महावीर से धर्म देशना सुनते हुए शकडाल पुत्र।

पत्नी पर बल प्रयोग करने वाले के प्रति तुम्हारे मन में मार डालने के भाव क्यों आए ?"

शकडालपुत्र अपने ही उत्तर में फंस गया। विचार करने पर उसे लगा कि भगवान महावीर का पुरुषार्थवाद यथार्थ है और गोशालक का नियतिवाद मिथ्या है। अतः उसने महावीर प्रभु से निर्ग्रन्थ धर्म स्वीकार कर लिया। भगवान महावीर द्वारा कथित श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करके वह भगवान महावीर का श्रेष्ठ श्रावक /उपासक बन गया। यथा समय महाश्रमण महावीर अन्यत्र विहार कर गए। शकडालपुत्र निष्ठापूर्वक श्रावक व्रतों का पालन करने लगा। पति के बाद पत्नी अग्निमित्रा ने भी भगवान महावीर से धर्मव्रत ग्रहण कर लिये थे।

गोशालक को पता चल गया कि उसके अनन्य भक्त शकडाल पुत्र की आस्था में परिवर्तन हो गया है। वह महावीर का उपासक बन गया है। तो गोशालक को बड़ा मलाल हुआ। वह पोलासपुर पहुंचा। अपने कुछ अनुयाइयों को लेकर सीधा शकडालपुत्र के घर गया। पर इस बार शकडाल पुत्र ने गोशालक का स्वागत सम्मान से नहीं किया। गोशालक समझ गया सचमुच शकडाल की आस्था नियतिवाद से डगमगा गई है। अपने उद्देश्य में सफल होने के विचार से गोशालक ने प्रतीकों के माध्यम से भगवान महावीर की प्रशंसा करना प्रारम्भ कर दिया, इसी क्रम से उसने प्रश्न किया –

"शकडाल पुत्र ! क्या यहां पोलासपुर में कोई महामहिम पुरुष आये थे ?"

महामहिम पुरुष कौन हैं ? शकडाल पुत्र ने कहा आप ही बताइए।"

क्या तुम नहीं जानते हो त्रिशलानन्दन वर्द्धमान महावीर महामहिम हैं ? इस पर शकडालपुत्र ने पूछा –

"वे महामहिम कैसे हैं ?"

गोशालक ने उत्तर दिया –

"दर्शन सम्पन्न और ज्ञान सम्पन्न होने के कारण महावीर महामहिम है। इसी प्रकार के प्रश्नोत्तर में गोशालक ने भगवान महावीर के प्रतीक बताये – महागोप, महासार्थवाह, महा धर्मकर्मी और महा नियामक। फिर उसने प्रतीकों की इस प्रकार व्याख्या की –

"धर्म - दण्ड से हम जीवों की रक्षा करने वाले होने के कारण महावीर महागोप हैं। वे अनेक जीवों को धर्म -मार्ग में संरक्षण देकर निर्वाण के महामार्ग की ओर उन्मुख करते हैं। अतः महासार्थवाह हैं।

इसी प्रकार हे देवानुप्रिय, भगवान महावीर संसारिक जनों को उन्मार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर उन्मुख करते हैं। वे मिथ्यात्व और कर्मान्धकार को नष्ट करके सद्धर्म का प्रतिबोध देते हैं, अतः महाधर्मी - कर्मी हैं। वे संसार-सागर में डूबने वाले प्राणियों को धर्म नौका द्वारा निर्वाण तट पर पहुंचाते हैं, इसलिए महानियामक हैं।

गोशालक के मुंह से भगवान महावीर की कपट पूर्ण प्रशंसा सुनकर शकडाल को प्रसन्नता हुई, क्योंकि वह यह नहीं जानता था कि गोशालक ने भगवान की प्रशंसा कपट से की है। प्रसन्न होकर उसने कहा –

आपने चूंकि भगवान का प्रतीकों के माध्यम से बड़ा सुन्दर गुणानुवाद किया है। अतः मैं आपको प्रतिहारिक, पीठ, फलक, शय्या आदि के लिए आमन्त्रित करता हूं।

इसके बाद शकडाल पुत्र ने गोशालक से पूछा – "क्या आप भगवान महावीर से शास्त्रार्थ कर सकते हैं?

उत्तर में गोशालक ने असमर्थता प्रकट की और कुछ दिन शकडालपुत्र के आवास पर रहकर उसकी आस्था में परिवर्तन करने का प्रयास किया, पर शकडालपुत्र महावीर के विचारों का अचल उपासक बना रहा। अपने उद्देश्य में विफल होकर गोशालक पोलासपुर से अपने अनुयाइयों के साथ चला गया।

चौदह वर्ष तक श्रावकचर्या का पालन करने के बाद शकडालपुत्र ने पूरी तरह पौषधशाला में निवास ले लिया। घर-व्यापार की सब जिम्मेदारियां अपने बड़े पुत्र को सौंप दीं और खुद श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं, कायोत्सर्ग आदि द्वारा धर्मपालन में लीन हो गया।

एक बार शकडालपुत्र पौषधशाला में कायोत्सर्ग साधना कर रहा था। मिथ्या दृष्टि देव ने उसे विचलित करने के अनेक उपाय किए पर शकडाल कायोत्सर्ग से विचलित नहीं हुआ। इसपर देव ने तीनों पुत्रों के उसी के सामने टुकड़े-टुकड़े कर दिए। खौलता हुआ तेल शकडालपुत्र की देह पर डाला। लेकिन धर्म धीर शकडाल पुत्र विचलित नहीं हुआ। अन्त में देव शकडालपुत्र की पत्नी अग्निमित्रा को घसीटता हुआ लाया। पत्नी की रक्षा करना न केवल मेरा कर्तव्य ही है, अपितु लोकधर्म का पालन भी है, यह सोच शकडालपुत्र देव के पीछे दौड़ा। उसके हाथ में अग्निमित्रा की जगह एक खम्बा आ गया और देव लुप्त हो गया। यद्यपि यह सब भ्रम मात्र था; फिर भी पत्नी की प्रेरणा से शकडाल पुत्र ने क्रोध के लिए प्रायश्चित्त किया। शुद्ध होकर फिर से साधना में लग गया। अन्त में

उसने अनशन पूर्वक देह त्याग किया और सौधर्म कल्प के अरुणाभ विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहां की चार पल्योपम की आयु पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और श्रमण चर्या द्वारा सिद्धगति प्राप्त करेगा।

सारांश

- मिथ्या/गलत अथवा असत्य सिद्धान्तों में भी अटूट आस्था, दृढ़ विश्वास और निश्चयात्मक बुद्धि हो सकती है, जैसी कि पोलासपुर निवासी शकडालपुत्र की थी। उसके रोम रोम में यह बस गया था कि नियतिवाद सत्य सिद्धान्त है ; जीव तो प्रकृति के हाथ का खिलौना है, वह अपनी ओर से कुछ नहीं कर सकता।
- एक तथ्य यह भी है कि मिथ्या सिद्धान्त में कितनी ही गहरी पैठ हो, कितना ही अटल निश्चय हो, फिर भी उसे हटाया जा सकता है; मिथ्या धारणा को बदलने की संभावना सदा रहती है।
- और यह भी एक तथ्य है – जिस मिथ्यावादी में ग्रहणशीलता होती है, वह पुरानी से पुरानी धारण की हुई मिथ्या धारणा को छोड़ने और सत्य को धारण करने में तत्पर रहता है। शकडालपुत्र, ग्रहणशील नियतिवादी था। भगवान महावीर के सीधे-सरल और अत्यन्त व्यावहारिक तर्कों को सुनते ही शकडालपुत्र ने नियतिवाद का त्याग कर दिया और श्रावकव्रती साधक बन गया था।
- 'व्यक्ति को अपने धर्माचार्य के अतिरिक्त दूसरे सिद्धान्तवादियों का भी समादर करना चाहिए।' इसे आधार मानकर महावीरोपासक शकडालपुत्र ने तटस्थ भाव से गोशालक के पधारने पर उसका भी यथोचित आदर किया था।
- एक बार सत्य का दर्शन हो जाने के बाद साधक को साधना से कोई भ्रष्ट नहीं कर सकता, शकडालपुत्र नियति के सिद्धान्त में अनुरक्त था। लेकिन जब भगवान महावीर से उसे सत्य का बोध प्राप्त हो गया तो गोशालक भी अपने पूर्वभक्त को महावीर के सत्य सिद्धान्त से डिगा नहीं पाया था।

शब्दार्थ

प्रातिहारिक = साधु-साध्वी द्वारा आवश्यकता न होने पर गृहपति को वापस लौटाने योग्य पाट आदि वस्तुयें। **फलक** = पट्टा। **सिद्धि** = समस्त कर्मों के क्षय से प्राप्त होने वाली अवस्था। **शय्या** = सोने का तख्त **धर्मदण्ड** = धर्म का दण्ड / अनुशासन। **सद्धर्म** = सच्चा धर्म। **शास्त्रार्थ** = शास्त्र के सिद्धान्तों पर विवाद / बहस

करना। **प्रतिबोध** = जानकारी। **श्रमणचर्या** = साधु का आचार।**महाविदेह** = स्थान विशेष, जहां से जीव निरन्तर मोक्ष जाते हैं।

अभ्यास

1. शकडाल किस धर्म-सम्प्रदाय को मानने वाला था ?
2. भगवान महावीर के आगमन की सूचना शकडाल को कैसे मिली ?
3. महावीर की देशना के सत्य को जब शकडाल हृदयंगम नहीं कर पाया तब भगवान ने उसे किन उदाहरणों से समझाया ?
4. नियतिवाद और पुरुषार्थवाद से आप क्या अर्थ समझते हैं ?
5. व्यक्ति के विचार बदलने से जीवन बदलता है, इसे आप शकडाल के उदाहरण से स्पष्ट करें।
6. गोशालक ने अपने अनुयायी को पुन: अपने सम्प्रदाय में लाने के लिये क्या प्रयत्न किया ?
7. महागोप, महानियामक और महासार्थवाह से आप भगवान महावीर के किन-किन गुणों को जानते हैं ?

8

आत्मद्रष्टा महाशतक

मगध देश की राजधानी राजगृही नगरी का जैन जगत में सर्वाधिक महत्व एवं गौरव है। यहां आराध्य प्रभु वर्धमान महावीर के चौदह चातुर्मास हुए थे। राजगृही के राजा श्रेणिक की भगवान महावीर में अनन्य आस्था थी। यहां पर ही गाथापति महाशतक नाम का एक निर्ग्रन्थ धर्मोपासक रहता था।

गाथापति महाशतक ने भगवान महावीर से श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे। अन्य सद्गृहस्थ गाथापति की तरह वह भी यश व श्री से पूर्ण था। उसकी अनेक पत्नियां थीं, उसमें प्रमुख थी रेवती। रेवती बाह्य रूप से जितनी सुन्दर थी, भीतर से उतनी ही कुरूप थी। उसने पति के साथ न तो भगवान की देशना सुनी थी और न धर्म में ही उसने कोई रुचि ली थी। मौज-शौक मनाना ही उसके जीवन का लक्ष्य था।

वह ईर्ष्यालु भी बहुत थी। अपनी सौत बहिनों से सदैव जलती रहती थी। उनका बुरा भी सोचती रहती। महाशतक साधु स्वभाव का व्यक्ति था। वह सभी पत्नियों से समान व्यवहार करता था तथा सभी की सुख-सुविधा का भी पूरा - पूरा ख्याल रखता था।

एक बार रेवती ने एक कुटिल विचार किया। उसने सोचा – यदि मैं अपनी सभी सौतों को मार दूं या मरवा दूं तो इनका समस्त धन, आभूषण आदि मुझे प्राप्त हो जायेंगे, फिर मेरा पति महाशतक

तुम यहां क्यों बैठे हो, रेवती ने कहा।

भी पूरी तरह मेरी इच्छानुसार चलेगा। ऐसा सोचकर रेवती ने अपनी सभी सौतों को विष आदि के प्रयोग से यमलोक भेज दिया। सौतों को मारने का काम उसने इस चतुराई से किया कि उस पर किसी को भी सन्देह न हुआ। सभी ने कर्म का फल मानकर, सन्तोष कर लिया। महाशतक को भी अपनी पत्नी पर सन्देह नहीं हुआ।

रेवती की सौतें दहेज में अपने पीहर से जो धन लाई थीं, वह सब रेवती ने प्राप्त कर लिया। पर्याप्त धन की स्वामिनी बनकर रेवती महाशतक के साथ सुखपूर्वक रहने लगी।

महाशतक श्रावक था। अतः उसके जीवन में भोग की प्रधानता नहीं थी। उसका जीवन साधनामय था। वह सांसारिक बातों में विशेष रुचि नहीं लेता था। इस तरह साधना करते हुए महाशतक ने चौदह वर्ष बिता दिये।

आत्म-चिन्तन, निरन्तर साधना और तीर्थंकरों पर अटूट श्रद्धा के कारण एक दिन महाशतक का मन संसार से उचट गया। अतः उसने पूरा समय धर्मपालन में लगाने का निश्चय कर लिया। एक बार उसने एक बड़े प्रीतिभोज का आयोजन किया। उसमें राजगृह के व्यापारियों, इष्टमित्रों और सम्बन्धियों को आमन्त्रित किया गया, फिर सब की उपस्थिति में महाशतक ने घर और व्यापार का पूरा भार अपने बड़े पुत्र को सौंप दिया और स्वयं पौषधशाला में रहने लगा। अब उसे संसार और संसार कें कार्यों से कोई प्रयोजन नहीं रह गया था।

रेवती को पति की यह चर्या जरा भी अच्छी नहीं लगती थी। वह विचार करने लगी कि जैसे भी हो, मैं अपने पति को पौषधशाला से घर वापस ले आऊं।

एक दिन रेवती पौषधशाला में गयी और महाशतक से घर चलने का आग्रह करने लगी। अनेक प्रकार से उसने महाशतक को घर लाने के प्रयत्न किये परन्तु उसके सभी प्रयास विफल चले गये। अपनी इस विफलता पर रेवती को बहुत क्रोध आया। वह जलती-भुनती हुई घर लौट आयी।

महाशतक की साधना उत्तरोत्तर बढ़ने के साथ ही विशुद्ध होने लगी थी। अन्त में उसने संलेखना व्रत ले लिया। सामावरणीय कर्म का क्षयोपशम हुआ और उसे अवधिज्ञान की उपलब्धि हुई, परिणाम-स्वरूप महाशतक पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में लवण समुद्र में एक हजार योजन तक देख सकता था। उत्तर दिशा में वह हेमवन्त पर्वत तक और नीचे रत्नप्रभा नरक तक पौषधशाला में बैठे-बैठे ही उसने अवधिज्ञान से पृथ्वी की चौरासी हजार साल की अगली स्थिति को भी जान लिया था।

रेवती दोबारा पौषधशाला पहुंची। इस बार भी वह महाशतक को आकर्षित नहीं कर सकी। ध्यानासन पर बैठे महाशतक को वह चलित करने के अनेक उपाय करने लगी। इन सब से महाशतक

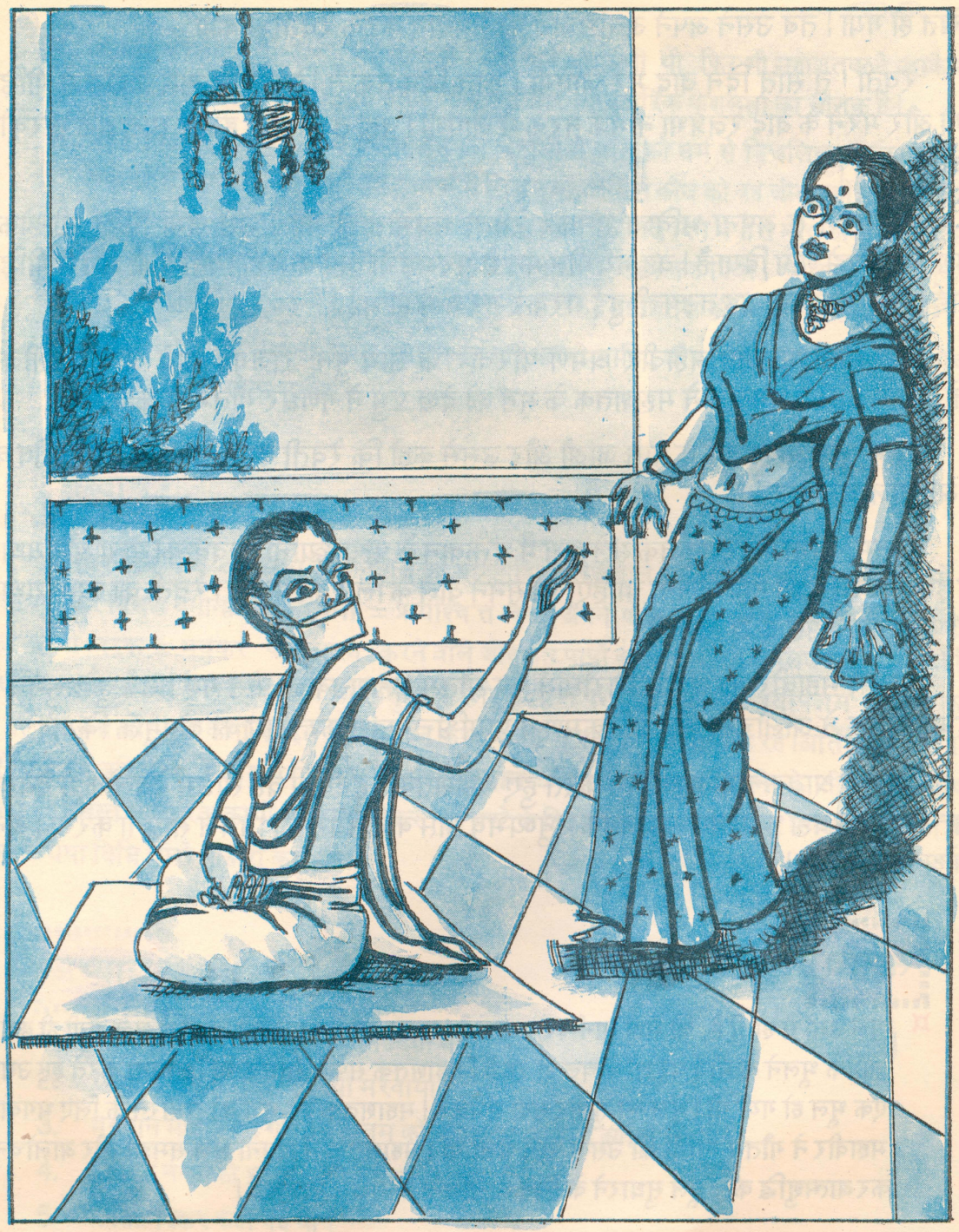

रेवती को उसका भविष्य बताते हुए महाशतक

दुःखित हो गया। तब उसने अपने अवधिज्ञान का उपयोग करके रेवती से कहा –

"रेवती ! तू सात दिन बाद मर जाएगी। सात दिन तक तू विषूचिका नामक रोग से पीड़ित रहेगी और मरने के बाद रत्नप्रभा नामक नरक में जाएगी। वहां तू चौरासी हजार साल तक नारकीय जीवन भोगेगी।"

अपने पति से अपना भविष्य सुनकर रेवती भयभीत हो गई। उसे लगा कि दुःखी होकर महाशतक ने मुझे शाप दिया है। वह भयभीत मन से घर पहुंची वहां जाते ही विषूचिका रोग से पीड़ित हो गई। सात दिन बाद वह तड़पती हुई मरकर नरक में ही गई।

उन्हीं दिनों भगवान महावीर श्रमण परिवार के साथ पुनः राजगृह आये और गुणशीलक राजोद्यान में ठहरे। भगवान ने महाशतक के मन को देख प्रभु ने गणधर गौतम से कहा –

"गौतम, तुम महाशतक के पास जाओ और उससे कहो कि रेवती का भविष्य बताने के दोष की वह आत्मालोचना करे।

"गौतम, अन्तिम मरणान्तिक संलेखना में भक्तवान के प्रत्याख्यानी श्रावक को सत्य और यथार्थ होते हुए भी ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिए, जो सुनने वाले के लिये कष्टप्रद हो। रेवती का उसने यथार्थ भविष्य बताकर उसे दुःख दिया है।"

भगवान महावीर का आदेश शिरोधार्य कर गौतम महाशतक के पास गए। सब कुछ सुनने के बाद महाशतक ने आलोचना की। प्रतिक्रमण व प्रायश्चित्त ग्रहण कर स्वयं को दोषमुक्त किया।

बीस वर्ष श्रावक चर्या का पालन करते हुए महाशतक देह त्याग वह सौधर्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ। वहां च्वय कर महाशतक मनुष्यभव प्राप्त कर संयम की विमल साधना करेगा। अन्त में मोक्ष प्राप्त करेगा।

सारांश

- भूल उसी से होती है, जो सही मार्ग पर चलता है। गलत रास्ते पर चलने वालों से भूल होगी ही क्यों ? क्योंकि भूलने के मार्ग पर तो वे चल ही रहे हैं। महाशतक सफल साधक था। साधना करते हुए उससे एक भूल हो गयी थी। भूल का सुधार सदा संभव है। महाशतक की भूल को सुधारने के लिए भगवान महावीर ने गौतम स्वामी को उसके पास भेजा था। महाशतक ने अपनी भूल समझी और आलोचना कर आत्मशुद्धि की। भूल सुधारने के लिए आलोचना ही सक्षम साधन है।

- महाशतक श्रावक था, किन्तु उसकी पत्नी रेवती घोर अधर्मिणी थी, फिर भी महाशतक ने उसके साथ गृहस्थ जीवन यापन किया, यह उसकी उदारता और व्यावहारिक कुशलता का द्योतक है।
- महाशतक की पत्नी रेवती ने अपनी असफल चेष्टाओं से पति को धर्म से विचलित करना चाहा, पर महाशतक साधना में दृढ़ रहा। वह कामजयी सिद्ध हुआ, लेकिन क्रोध को वह जीत नहीं पाया था। क्रोध में महाशतक ने रेवती को उसका अगला भव बता दिया कि सात दिन में तेरी मृत्यु होगी और तू नरक में जाएगी। महाशतक ने अवधि ज्ञान में जो देखा वह कटु सत्य कह दिया। कटु सत्य महाशतक की भूल थी और गौतम स्वामी ने उसी की आलोचना कराकर महाशतक की आत्म-शुद्धि कराई थी।
- साधक को अपनी साधना सदैव अप्रमत्त रह कर करनी चाहिए और स्खलना हो जाने पर आलोचना के लिये तत्पर रहना चाहिए।

शब्दार्थ

ज्ञानवरणीय कर्म = आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाले कर्म। **प्रतिक्रमण** = अपने दोषों की आलोचना कर विशुद्ध बनाना। **आलोचना** = प्रायश्चित्त स्वरूप अपने दोषों, भूलों वस्तुतः चूक को गुरु के सम्मुख प्रकट करना। **नरक** = भयंकर पापाचरण करने वाले जीवकृत पापों का फल भोगने के लिए जहां पैदा होते हैं। **प्रायश्चित्त** = साधना में लगे हुए दोषों की विशुद्धि के लिए हृदय से पश्चात्ताप करना। **क्षयोपशम** = कुछ कर्मों को नष्ट कर देना और कुछ कर्मों को इस प्रकार शान्त कर देना कि वे फल देने के योग्य न रहें। **आर्तध्यान** = प्रिय के वियोग एवं अप्रिय के संयोग में चिंतित रहना। **रौद्रध्यान** = दूसरों का बुरा करने के तीव्र भाव। **पौषध शाला** = समस्त सांसारिक कार्यों से निवृत्त होकर २४ घण्टे के लिये धर्मध्यान करना तथा उपवासी रहना। **भक्त पान** = यथा विधि चारों आहारों का त्याग।

अभ्यास

1. क्या महाशतक ने रेवती को शाप दिया था ?
2. रेवती ने अपनी सौतों को क्यों मरवाया ?
3. भगवान महावीर ने गणधर गौतम को महाशतक के पास क्यों भेजा था ?
4. राजगृह नगर को भाग्यशाली क्यों माना जाता है ?
5. रेवती मरकर कहां गई थी ?

9

श्रावक नन्दिनीपिता

श्रावस्ती नगर में रहता था नंदिनीपिता। इस नगर में नंदिनी के समान अन्य अनेक महावीर-उपासक भक्त रहते थे। उन भक्तों की यह कामना रहती थी कि वह दिन धन्य होगा, जब प्रभु महावीर श्रावस्ती नगर में पधारें और हम उनकी जनकल्याणी भव्य वाणी का श्रवण करें एवं उस वाणी को हृदय में धारण करें, जिससे हमारा भवबंधन मिट सके।

नंदिनीपिता भी ऐसा सोचते थे। इसके लिए उन्होंने अपने घर पर ऐसे अनुचर रखे हुए थे, जो भगवान महावीर एवं अन्य पाँच महाव्रत धारी मुनिराजों के श्रावस्ती पधारने की उनको सर्वप्रथम सूचना देते थे। वे सेवक जब श्रावस्ती में मुनिराज पधारते तो उमंगित होकर नंदिनी व श्राविका अश्विनी को सूचित करते थे। दम्पती भक्तिभाव से मुनिजनों के दर्शन करने जाते व वीतराग वाणी का गद्‌गद् भाव से श्रवण करते थे। यथाशक्ति व्रत प्रत्याख्यान भी लेते।

बहुत दिन हो गए थे –नंदिनीपिता यह चिंतन करते, विचारते कि इस बार श्रमण भगवान महावीर उसके नगर में पधारेंगे तो वह धर्मानुरागिनी अश्विनी को साथ ले जायेगा। प्रभु की वाणी सुनेगा और श्रावक के १२ व्रत ग्रहण करेगा। प्रभु के श्रीमुख से ही पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं तीन गुणव्रत ग्रहण कर मुनि। श्रमण के आचारवत् आत्मकल्याण के पथ पर नियमतः अग्रसर होगा।

श्रावक के १२ व्रत ग्रहण करने के बाद मैं धीरे धीरे उपाश्रय (पौषधशाला) में पौषधव्रती होकर रहने लगूंगा। इस प्रक्रिया का अभ्यास बढ़ जाएगा तो फिर मैं श्रावक की ग्यारह प्रतिमा (प्रतिज्ञा के प्रकार) का अनुसरण करूंगा। वह दिन मेरे लिए परम धन्य होगा जब मैं ११ प्रतिमाओं की साधना करते हुए वीतराग पुरुषों की तरह अपने को संवर, निर्जरा और कर्मों की अबंध अवस्था से अपनी आत्मा को मुक्त करूंगा। आत्मा संसार में भटक ही इसलिए रहा है –

चौदह राजु त्तंग नभ।
लोक पुरुष संठाण
तामें जीव अनादि तैं।
भरमत है बिन ज्ञान।

नंदिनीपिता भगवान के परम भक्त और निष्ठावान श्रावक थे। इसी प्रकार उनकी पत्नी अश्विनी भी भगवान की अनन्य उपासिका थी। वह भी यह कामना (मनोरथ) रखती थी कि वह दिन धन्य-धन्य होगा, जब मैं प्रभु के समवसरण मैं बैठकर उनकी अमृतवाणी का श्रवण करूंगी।

नंदिनी महावीर के भक्तों में बहुत बड़े धनपति थे, यह उनकी विशेषता तो थी ही; इसके साथ ही उनके म्रानवीय गुण, निष्काम जीवन, निरपेक्ष व असाम्प्रदायिक विचारों के कारण श्रावस्ती के समस्या ग्रस्त लोग उनके पास अपनी पारिवारिक और व्यक्तिगत समस्यायें लेकर आते और उनका निदान पाते। नंदिनी अपने निरपेक्ष व बुद्धिमत्ता पूर्ण उत्तरों के समाधान से उन्हें संतुष्ट करते थे।

इसी प्रकार अश्विनी भी केवल धर्मसाधना के कारण ही समादरणीया नहीं थी। वह तत्कालीन नारी वर्ग में सम्माननीय भी थी। नारी को सदैव सफल नेतृत्व की आवश्यकता रहती है। अश्विनी अपने बुद्धि-कौशल से उनका सफल ने तृत्व करती थी। उन्हें जीवन के शाश्वत सत्यों से परिचित कराती। उनका सामाजिक, पारिवारिक व आध्यात्मिक मार्गदर्शन करती थी।

नंदिनीपिता धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य और प्रभुतासम्पन्न श्रावक थे। १२ करोड़ स्वर्णमुद्रा के वे अधिपति थे। उनके चार-चार गोव्रज (गोकुल) थे। नगर में सभी वर्ग के लोग उनका हार्दिक सम्मान करते थे। इतना सब कुछ होते हुए भी वे प्रभु भक्ति, ईमानदारी व सदाचार से विमुख नहीं थे। सादगी उनके जीवन की सुगन्ध थी तो सदाचार उनके आभूषण थे।

एक दिन उनके मनःसिंचित आराध्य महावीर का श्रावस्ती में आगमन हुआ। श्रावस्ती के अन्य

उपासकों की तरह नंदिनीपिता भी प्रभु दर्शन के लिए सपत्नीक उनके समवसरण में पहुंचे। भगवान की जन कल्याणी दिव्य धर्मदेशना सुनी। वे श्रावक के १२ व्रत ग्रहण करने को उत्सुक हो गये। जहां स्वयं ने २ व्रत ग्रहण किये, वहाँ अश्विनी ने भी महावीर भगवान से १२ व्रत ग्रहण कर लिये।

इसके बाद दम्पती ने वर्षों तक शुद्ध मन एवं एकाग्रभाव से व्रतों का पालन किया। नंदिनीपिता ने अश्वानी से कहा –

"प्रिये, हमें व्रत ग्रहण किये १४ वर्ष बीत गये हैं। हमारा अधिक समय धर्म ध्यान, उपवास, पौषध आदि करते हुए व्यतीत हुआ है। कर्मों की जितनी निर्जरा हमसे संभव हो सकी, की; अब मेरा मन ११ प्रतिमा धारण करने को हो रहा है। मैं अपना कार्य-व्यापार एवं घर-परिवार का सम्पूर्ण दायित्व पुत्र को सौंपकर हमेशा धर्मस्थान (पौषधशाला) में रहना चाहता हूँ। तप की विशिष्ट साधना में अपने जीवन का शेष समय लगाना चाहता हूँ।"

चिरकाल से मेरी अभिलाषा थी कि ग्यारह प्रतिमाव्रत की आराधना करते हुए जीवन का अंत हो। अस्तु, आज से तुम अपने पुत्र के पास रहना अथवा साध्वी संघ की सेवा में रहना पर मैं स्वयं उपाश्रय में रहूँगा।

पत्नी की स्वीकृति प्राप्त होने पर नंदिनीपिता उपाश्रय में धर्मध्यानमय जीवन व्यतीत करने लगे। २४ घंटों में से अधिकांश समय उनका तप और आत्मस्वरूप का चिंतन करते हुए व्यतीत होने लगा।

तपस्या करते-करते जब उनका शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया। और जब उन्होंने जान लिया कि धर्म साधना में अब मेरा शरीर साधक न रहकर बाधक सिद्ध हो रहा है तो एक दिन उन्होंने सम्यक् दर्शन पूर्वक अपने अंदर उतर कर देखा तो पाया शरीर के सारतत्व का उपयोग हो चुका है। अब जितने दिन रहेगा, धर्म चिंतन व तपस्या में रुकावट ही पैदा करेगा, अतः उन्होंने संथाराव्रत (संलेखना) ग्रहण कर लिया।

ऐसा करते हुए उन्हें एक माह बीत गया था। जीवन का अंतिम क्षण घटने को हुआ, तब उन्होंने नमस्कार महामंत्र की अंतिम रूप से शरण ग्रहण की, वीतराग प्रभु का स्मरण किया और महामंत्र का उच्चारण करते हुए ही देह को विसर्जित कर दिया।

सारांश

- घर-गृहस्थी और संसार के सभी काम करते हुए भी मन को सदा धर्म और प्रभु चिन्तन में लगकर जीवन बिताने वाले व्यक्ति का हर कार्य भक्ति और धर्म हो जाता है, यह प्रेरणा नन्दिनी पिता के कथानक से मिलती है।
- जीवन के चौदह वर्ष धर्मसाधना करते हुए बिताने के बाद नन्दिनी पिता ने श्रमणों का सा कठोर जीवन बिताना शुरू किया और बिना किसी उपसर्ग और देवबाधा के उसने साधना सम्पन्न की।
- **बड़े-से-बड़े साधक में भी यदि संसार की कोई इच्छा, कामना, आसक्ति, क्रोध आदि शेष होता है, तब** उसकी निष्ठा की परीक्षार्थ उपसर्ग आते हैं, पर नन्दिनीपिता के जीवन में अन्त तक कोई बाधा। उपसर्ग नहीं आया, इससे ज्ञात होता है –धर्म में उसकी रुचि सहज-स्वाभाविक थी और उसकी कोई सांसारिक-प्रवृत्ति शेष नहीं रह गयी थी।

शब्दार्थ

प्रत्याख्यान = नियम, व्रत। **वीतराग** = जिसने राग को पूर्णतः समाप्त कर दिया हो। **श्रावक** = तीर्थंकर के वचनों पर आचरण करने वाला (गृहस्थ)। **धर्मानुरागी** = धर्म में रुचि रखने वाला। **दम्पती** = पति-पत्नी। **संवर** = पाप प्रवृत्तियों को बन्द करना। **निर्जरा** = साधना के द्वारा पाप कर्मों को नष्ट करना। **राजू** = परिमाण विशेष। **उत्तुंग** = ऊंचा। **संठाण** = आकार। **अनादि** = जिसका प्रारम्भ न हो। **आध्यात्मिक** = आत्मा सम्बन्धी ज्ञान।

अभ्यास

1. नन्दिनी पिता ने कुछ विशेष सेवक किसलिए नियुक्त किए थे ?
2. अश्विनी कौन थी ?
3. नन्दिनीपिता की सदा सर्वदा क्या इच्छा रहती थी ?
4. नगर के अन्य लोग नन्दिनीपिता के पास क्यों आते थे ?
5. श्रावक व्रत ग्रहण करने ने बाद नन्दिनीपिता कितने वर्ष तक अपनी पत्नी औरे पुत्र साथ रहा था ?
6. नन्दिनीपिता ने संलेखना व्रत क्यों ग्रहण किया था ? यह व्रत कब और क्यों किया जाता है ?

10

श्रावक सालिहीपिता

साधु अकिंचन होता है। उसके पास कुछ नहीं होता। बाह्य जीवन में उसके अभाव ही अभाव है। पैरों में पदत्राण नहीं होते और सिर भी नंगा रहता है। लेकिन साधु के भीतर अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति का कोष भरा रहता है। वह दूसरों को भी शान्ति बांटता है। वह सभी के लिए प्रेम लुटाता रहता है।

इसके ठीक विपरीत सांसारी / भोगी के बाह्य जीवन में सम्पन्नता होती है। धन-सम्पत्ति, भवन-परिवार सब कुछ होता है, उसके पास। लेकिन उसके भीतर अशान्ति, चिन्तायें भरी होती हैं। यदि कोई मनुष्य दरिद्र-निर्धन हो तो उसके जीवन में भीतर और बाहर- दोनों ओर अंधेरा हो जाता है। बाहर मलिनता अथवा अभाव और भीतर दीनता/अशान्ति रहती है।

एक सद्गृहस्थ और धर्मनिष्ठ श्रावक का जीवन सबसे अलग होता है। सद्गृहस्थ /श्रावक अपने जीवन में धर्म का ऐसा दीपक जलाता है कि भीतर-बाहर दोनों ओर उजाला रहता है। बाहर अटूट सम्पत्ति रहती है और भीतर मन में अखण्ड शान्ति रहती है। ऐसे सद्गृहस्थ का प्यार अपने परिवार तक ही सीमित नहीं रहता, वह जीवमात्र सबसे प्यार करता है।

श्रावस्ती नगरी में अनेक सद्गृहस्थ रहते थे। सालिहीपिता श्रावस्ती नगरी में रहने वाले सद्गृहस्थ थे। इनका नाम तो शालेयिकापिता था, पर बोलचाल में सालिहीपिता कहे जाते थे। ये

बारह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के स्वामी थे। चार करोड़ स्वर्ण खण्ड उनके कोष में जमा थे, चार करोड़ व्यापार में लगे हुए थे और शेष चार करोड़ लेन देन में थे। श्रावस्ती नगरी में उनका बहुत मान था। उनकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था जो पतिपरायणा और पति का अनुगमन करने वाली सन्नारी थी।

एक बार महाश्रमण महावीर श्रावस्ती में आए। उनकी धर्मदेशना सालिहीपिता ने सुनी तो श्रावक के बारह व्रत उन्हीं से अंगीकार कर लिए। उनकी पत्नी फाल्गुनी भी बारहव्रती श्राविका बनी। अन्त में सालिहीपिता ने ग्यारह प्रतिमाएं धारण कीं और संलेखना। अनशन करके सुखद मृत्यु का वरण कर सौधर्म लोक के अरुणकील विमान में देवभव को प्राप्त हुए। कालान्तर में मनुष्य जन्म प्राप्त करके, साधना करते हुए मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

सारांश

सालिहीपिता सद्गृहस्थ था। सद्गृहस्थ के बाहरी जीवन में भी अभाव नहीं होता और भीतर भी शान्ति रहती है।

धर्म के बिना धनी भोगी बाहर से भले ही सम्पन्न हो, पर भीतर से अशान्त/बैचेन रहता है और धर्मविमुख दरिद्र भोगी के भीतर-बाहर अँधेरा रहता है। अत: धर्म ही सुखों का मूल है।

शब्दार्थ

अभाव = न होना, कमी। **पदत्राण** = जूते, चप्पल। **अखण्ड आनन्द** = सदा बना रहने वाला भीतर का सुख। **भण्डार** = कोष, खजाना। **भोगी** = संसार को सच्चा समझ कर संसार और संसार की वस्तुओं में सुख समझने वाला व्यक्ति। **सम्पन्नता**= पूर्णता, अधिकता, **मलिनता** = मैलापन, अभाव। **दीनता** = अकिंचनता, हीनता का भाव। **अशान्ति** = चिन्ता, बैचेनी। **सद्गृहस्थ** = गृहस्थ जीवन को धर्ममय बनाकर जीने वाला व्यक्ति; जो दान-पुण्य, परोपकार, साधु-सेवा में धन और समय लगाता है। **महाश्रमण** = सभी श्रमणों में श्रेष्ठ; केवल ज्ञानी साधु,यह विशेषण भगवान महावीर के लिए रूढ़ है। **संलेखना/अनशन** = विवशता या किसी अन्य कारण से भोजन का त्याग अनशन कहाता है। अन् = नहीं, अशन = भोजन। लेकिन मृत्यु को निकट । आसन्न जानने के बाद स्वेच्छा से मृत्यु को सरल करने के लिए भोजन का त्याग या अनशन, संलेखना व्रत कहलाता है।

अभ्यास

1. सालिहीपिता का मूल नाम क्या था ?
2. सालिहीपिता के जीवन में भीतर-बाहर उजाला था, इससे आप क्या समझते हैं ?
3. साधु के बाहरी जीवन में अभाव रहता है तो उसके भीतर के जीवन में क्या-क्या रहता है, इस पाठ के आधार पर समझाएं।
4. सालिहीपिता कितने करोड़ मुद्राओं का स्वामी था और उसकी समस्त मुद्राएँ कहाँ -कहाँ थीं ?
5. गृहस्थ और सद्‌गृहस्थ में क्या अन्तर है ?
6. फाल्गुनी कौन थी और वह कैसी नारी थी ?

परिशिष्ट

श्रावक के बारह व्रत

पांच अणुव्रत

1. **अहिंसा अणुव्रत** : निरपराध त्रस जीव की संकल्पपूर्वक हिंसा का त्याग करना, न करवाना, मन, वचन और काया से।
2. **सत्य अणुव्रत** : स्थूल (मोटा) झूठ न बोलना, न बोलवाना, मन, वचन और काया से।
3. **अस्तेय अणुव्रत** : लोक विरुद्ध स्थूल चोरी न करना, न करवाना, मन, वचन और काया से।
4. **ब्रह्मचर्य अणुव्रत** : श्रावक पर-स्त्री को माता, बहिन एवं पुत्री की दृष्टि से देखें और अपनी स्त्री की मर्यादा करे।
5. **परिग्रह अणुव्रत** : अपनी इच्छाओं को सीमित करते हुए धन-धान्य, जमीन, मकान आदि के परिग्रह की मर्यादा करे।

तीन गुणव्रत

6. **दिशा-परिमाण व्रत** : इसमें साधक पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची और नीची, इन छह दिशाओं में आवागमन की मर्यादा करे।
7. **उपभोग - परिभोग परिमाण व्रत** : दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के प्रयोग की मर्यादा करें और पन्द्रह कर्मादान का त्याग करें।
8. **अनर्थ -दण्ड विरमण व्रत** : निष्प्रयोजन पाप क्रियाओं का परित्याग अनर्थ -दण्ड का त्याग व्रत है।

चार शिक्षा व्रत

9. **सामायिक व्रत** : श्रावक प्रतिदिन प्रातः सायं शुद्ध सामायिक (साधना-विशेष) करे।
10. **देशावकासिक व्रत** : मुमुक्ष गृहस्थ संवर (साधना विशेष) व्रत करे तथा चौदह नियम धारण करे और तीन मनोरथों का चिन्तन करे।

11. **पौषधव्रत** : २४ घण्टों के लिये निराहार रहने की साधना पौषधव्रत है। गृहस्थ एक मास में दो बार इस साधना को करे।

12. **अतिथि -संविभाग व्रत** : साधु-साध्वियों को निर्दोष आहार-पानी देना तथा द्वार पर आये याचक को दान देना।

श्रावक की 11 प्रतिमायें

1. **दर्शनप्रतिमा** : एक मास तक सावधानी पूर्वक आराधना निरतिचार सम्यग्दर्शन की आराधना करना।

2. **व्रत प्रतिमा** : दर्शनप्रतिमा के अनुसार निरतिचार सम्यग्दर्शन का पालन करते हुए दो मास तक १२ व्रतों का निर्दोष रूप से पालन करना।

3. **सामायिक प्रतिमा** : तीन मास तक प्रतिदिन प्रातः सायं अप्रमत्त भाव के साथ सामायिक करना।

4. **पौषध प्रतिमा** : अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या इन चार पर्व दिनों में पौषध व्रत करना। यह प्रतिमा चार मास की होती है।

5. **कायोत्सर्ग प्रतिमा** : पर्व दिवसों में घर या बाहर, चतुष्पथ आदि में रात भर कायोत्सर्ग करके रहना। यह पांच मास की है।

6. **अब्रह्मवर्जन प्रतिमा** : छह मास तक निर्दोष रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना।

7. **सचित्त - वर्जन प्रतिमा**:सात महीने तक सचित्त आहार का परित्याग करना।

8. **आरम्भ-वर्जन प्रतिमा** : आठ मास तक अपने हाथ से किसी भी निमित्त से आरम्भ करने का त्याग करना।

9. **प्रेष्य-वर्जन प्रतिमा** : नौ मास तक नौकर आदि से भी आरम्भ न करवाना।

10. **उद्दिष्ट-वर्जन प्रितमा** : प्रतिमाधारी के उद्देश्य से बनाया हुआ आहार भी न लेना। इसका कालमान दस मास का है।

11. **श्रमणभूतप्रतिमा** : स्वजन - परिजनों के सम्बन्धों का त्याग कर मुख वस्त्रिका, रजोहरण आदि साधुवेश को धारण कर, केशलोच करते हुए, मुनि की भाँति ११ महिने तक रहना, श्रमणभूतप्रतिमा है।

इन प्रतिमाओं का पालन क्रमशः किया जाता है। इनकी आराधना में कुल ६६ मास अर्थात ५ वर्ष ७ मास लगते हैं।

महावीर के उपासक : एक दृष्टि में

क्रम	नाम	ग्राम	भार्या	हिरण्य	गोधन	उपसर्ग में उपपात	देव विमान
1.	आनन्द	वाणिज्य ग्राम	शिवानन्दा	१२ कोटि	४ गोव्रज	×	अरुण विमान
2.	कामदेव	चंपानगरी	भद्रा	१८ कोटि	६ गोव्रज	देव का, स्थिर रहा	अरुणाभ
3.	चुलनीपिता	वाराणसी	श्यामा	१८ कोटि	८ गोव्रज	देव का, चलित हुआ	अरुणप्रभ
4.	सुरादेव	वाराणसी	धन्या	१८ कोटि	६ गोव्रज	देव का, चलित हुआ	अरुणकांत
5.	चुल्लशतक	आलभिका	बहुला	१८ कोटि	६ गोव्रज	देव का, चलित हुआ	अरुणश्रेष्ठ
6.	कुंडकौलिक	कंपिलपुर	पुष्पा	१८ कोटि	६ गोव्रज	देव का, स्थिर रहा	अरुणध्वज
7.	शकडालपुत्र	पोलासपुर	अग्निमित्रा	३ कोटि	१ गोव्रज	देव का, चलित हुआ	अरुणभूत
8.	महाशतक	राजगृह	रेवती आदि १३	२४ कोटि	८ गोव्रज	स्त्री का	अरुणावतंसक
9.	नन्दिनीपिता	श्रावस्ती	अश्विनी	१२ कोटि	४ गोव्रज	×	अरुणगर्भ
10.	सालिहीपिता	श्रावस्ती	फाल्गुनी	१२ कोटि	४ गोव्रज	×	अरुणकील

सुरुचिपूर्ण ललित साहित्य

(स्तोत्र - साहित्य)

भक्तामर स्तोत्र (भाषा पद्यानुवाद, भावार्थ सहित)
कल्याण मन्दिर स्तोत्र : " " "
चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र : " "
वीर स्तुति " " " "
उपासना (स्वाध्याय-संकलन) " "

(काव्य)

मन्दाकिनी "
ऋतम्भरा
(जीवन चरित्र)
भगवान् पार्श्वनाथ
विश्ववन्द्यमहावीर
महाप्राण मुनि मायाराम
महावीर का बेटा
रूपोक्केसरी श्री केसरी सिंह जी महाराज
अद्भुत तपस्वी
अनहद में अनुगुंजित आचार्य
श्रमण धर्म के मुकुट
योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज
प्रज्ञापुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण (अभिनन्दन ग्रन्थ)

(कथा साहित्य)

गुरुदेव योगिराज की कहानियां
गुरुदेव योगिराज की बोध कथाएं
सुभद्र कहानियां
जैन कथामृतम्
धर्म नाव के बाल यात्री
धार्मिक कहानियां
भोर भई (नाटक)

प्राप्ति स्थल :
मुनि मायाराम सम्बोधि प्रकाशन
के० डी० ब्लॉक, पीतम पुरा, दिल्ली - ११००३४

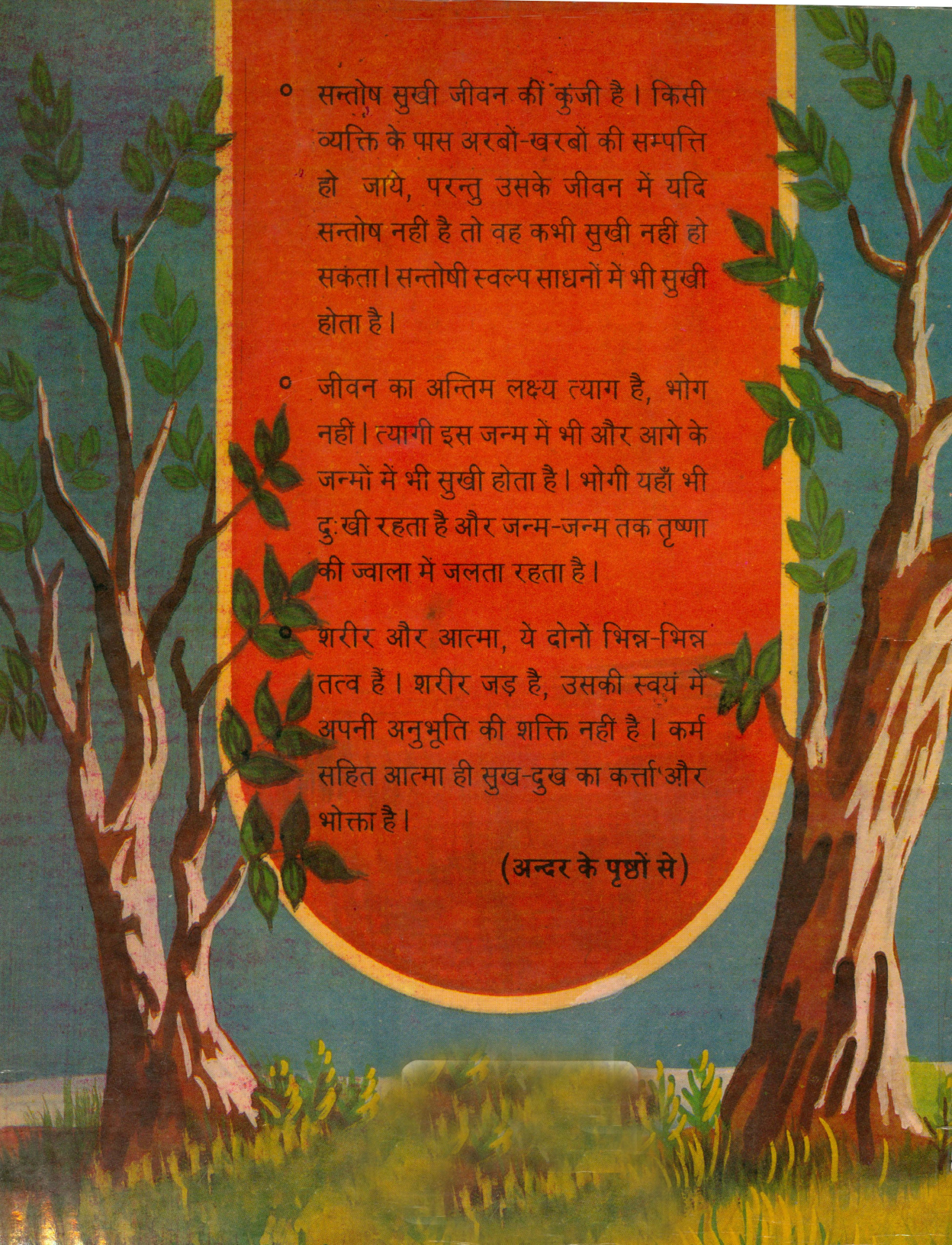

- सन्तोष सुखी जीवन की कुंजी है। किसी व्यक्ति के पास अरबों-खरबों की सम्पत्ति हो जाये, परन्तु उसके जीवन में यदि सन्तोष नही है तो वह कभी सुखी नहीं हो सकता। सन्तोषी स्वल्प साधनों में भी सुखी होता है।

- जीवन का अन्तिम लक्ष्य त्याग है, भोग नहीं। त्यागी इस जन्म में भी और आगे के जन्मों में भी सुखी होता है। भोगी यहाँ भी दुःखी रहता है और जन्म-जन्म तक तृष्णा की ज्वाला में जलता रहता है।

- शरीर और आत्मा, ये दोनों भिन्न-भिन्न तत्व हैं। शरीर जड़ है, उसकी स्वयं में अपनी अनुभूति की शक्ति नहीं है। कर्म सहित आत्मा ही सुख-दुख का कर्त्ता और भोक्ता है।

(अन्दर के पृष्ठों से)